अवतार तथा अन्य कहानियाँ

शूलपाणि

वरुण प्रकाशन

करुण-प्रकाशन
शान्ताकारम्
सिविल लाइन्स-२
सुलतानपुर ।

प्रथमावृत्ति १९७५

मुद्रक :
इलाहाबाद प्रेस
३७०, रानी मण्डी,
इलाहाबाद

मूल्य बारह रुपये पचास पैसे

विषय-सूची

१. पतिव्रता ६
२. फल के दावेदार ३१
३. उपदेश ४०
४. अवतार ५५
५. पहला कदम ६६
६. वचन ७६
७. प्राणो की बाजी ८८
८. मोहिनी ९६
९. नयी जिन्दगी १११
१०. लहर १२२
११. विजय १३२
१२. प्रतिशोध १४३
१३. धर्म रक्षक १६१
१४. परलोक सुख १७५
१५. वरदान १८३

विशिष्ट सम्मतियां

श्री शूलपाणि की कहानियां आस्तिकता, आदर्शवाद, और कल्याण कारिणी भावनाओं से युक्त हैं। इन कहानियों में भावना है, कला है। मैं हिन्दी साहित्य में उनके कहानी-संग्रह की प्रतीक्षा करूंगा।

भगवती चरण वर्मा
(प्रसिद्ध उपन्यासकार तथा भूतपूर्व
अध्यक्ष, हिन्दी समिति,
उ० प्र०, लखनऊ)

मैंने श्री शूलपाणि लिखित 'अवतार और अन्य कहानियाँ' शीर्षक संग्रह का अवलोकन किया। इस संग्रह की कहानियां मानव समाज के विभिन्न पक्षों पर सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिखी गयी हैं। इसमें विचार-पक्ष की गहनता के साथ ही साथ शिल्प पक्ष का भी अभिनव रूप दृष्टिगत होता है। इनमें जीवन के यथार्थ के प्रति कटु व्यंग्य की सशक्त अभिव्यंजना हुई है। इसमें निस्संदेह वर्तमान कहानी की एक नई दिशा इंगित होती है।

डा० प्रताप नारायण टंडन
एम० ए०, डी० लिट
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ,

श्री शूलपाणि की कहानियों के संकलन का मैंने भलीभांति अव लोकन किया। ये कहानियाँ वस्तुतत्व एवं शिल्प आदि अनेक दृष्टियों से नवीनता और ताजगी लिए हुए हैं। अपनी सामाजिक और व्यंग्यपूर्ण कहानियों में शूलपाणि का विदग्ध कहानीकार बड़े अभिनिवेश के साथ सामने आता है। इन कहानियों से हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि होगी।

डा० रामफेर त्रिपाठी
एम० ए० पी० एच० डी०
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

दो शब्द

अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति अन्य माध्यमों से कर सकने की सामर्थ्य न होने पर ही शायद लिखने की चाह होती है, लेकिन जो लिखा है उसमें जो चाहा वह व्यक्त हुआ या नहीं, यह लिखने वाला नहीं जान सकता। इसका निर्णय तो प्रबुद्ध पाठक ही कर सकते हैं। अतः यह संकलन उनके निर्णय के लिये उन्हीं के हाथों सौंपता हूँ।

प्रस्तुत संकलन में कुछ कहानियां पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं, कुछ पहली वार प्रकाशित हो रही हैं। 'अवतार', 'पतिव्रता' और 'वचन', 'सरिता', नई दिल्ली, में छप चुकी हैं और उसी के सौजन्य के तथा उसके प्रति आभार प्रकट करते हुए यहाँ संकलित की गयी है।

प्रस्तावना के लिये मैं सरदार पटेल युनिवार्सिटी, गुजरात, के भूतपूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष तथा लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के भूत-पूर्व रि सर्च प्रोफेसर श्री मोहन वल्लभ पंत जी का कृतज्ञ हूँ। संकलित कहानियों का सम्यक विवेचन इस प्रस्तावना में करने की उन्होने कृपा की है।

भारतीय पृष्ठभूमि में लिखी ये कहानियां दूसरे देश के विद्वानों को कैसी लगेगी, यह जिज्ञासा और कुतूहल मन में बना रहता था। संयोग से विदेश के हिन्दी के जानेमाने एक प्रसिद्ध विद्वान को लखनऊ में पाकर मैंने उनके एक परिचित के माध्यम से अपनी उक्त कहानियां उन्हें आलो-चना के लिये दीं। उनकी सम्मति से मेरा उत्साह और हिम्मत बढ़ी। उन्होंने "पतिव्रता" को बहुत पसन्द किया। अतः प्रस्तुत संकलन में उसे पहले स्थान पर रखा है।

प्रकाशित कहानियों में से जिन्हें इस संकलन में सम्मिलित किया गया है, "उपदेश" शीर्षक कहानी प्रसिद्ध पत्रकार एवं लेखक श्री बनारसी-दास चतुर्वेदी जी ने पसन्द की थी और उसे "विशाल भारत", कलकत्ता, में प्रकाशित कराया था। "लहर" शीर्षक कहानी हिन्दी के चोटी के लेखक एवं आलोचक तथा प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री मन्मथ नाथ गुप्त जी को पसन्द आयी थी। उनके परामर्श के अनुसार मैंने उसे छोटा करके उसका अन्त बदला है। उन्होंने "प्राणों की बाजी" शीर्षक कहानी 'सामन'

शीर्षक से अपने द्वारा संपादित भारत सरकार की पत्रिका "योजना" में छापी थी।

"पहला कदम" शीर्षक कहानी, "कहानीकार," वाराणसी, में छपी थी। इस पर, अन्य कहानियों के साथ, "सारिका", वम्बई, में समीक्षा करते हुए उसके समीक्षक ने १९७० में लिखा था, "ये ऐसी कहानियां हैं जिन्हें १९७० की कहानियां नहीं माना जा सकता है... ...ये कुछ कहानियां कुछ सच्चाइयाँ सामने लाती हैं......अपने समय की चुनौतियों को कला के माध्यम से रूपान्तरित करने का काम जो कहांनियां कर सकती हैं, वे ही कहानियां जीवित भाषा और जीवित देश की कहानियां हैं। जनहत्या, नयी किस्म की गुलामी और विसंगति के विद्रूप से जिन कहानियों का सामना है, वे ही दूसरी कहानियों की तुलना में चुनौती की तरह अड़ सकती हैं......हजार-हजार वुरी कहानियों के वीच एक चुनौती देने वालो कहानी 'नया आशावाद' पैदा करतो है।

"धर्म-रक्षक" कहानी जो अमृत पत्रिका, इलाहावाद, में प्रकाशित हो चुकी थी, श्री कन्हैया लाल मिश्र, प्रभाकर जो को इतनी पसन्द आयी कि उसे उन्होंने अपने द्वारा सम्पादित 'नया जोवन' में फिर से छापा।

"परलोक का सुख" शीर्षक कहानी श्री यशपाल जी ने १९४७ में "विप्लव" में छापी थी। आज इस कहामी को पढ़कर यह बात सामने आती है कि तव से इस देश के आद्योगिक क्षेत्र में काफी प्रगति कर लेने पर भी उसकी गली कूचियों में रहने वाले सामान्य जन ने सामाजिक जीवन में कितना कम अन्तर आ पाया है।

अन्त में हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान तथा लेखक डा० प्रताप नारायण टंडन, प्राध्यापक, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ, का अत्यन्त आभारी हूँ जिनके प्रोत्साहन तथा प्रेरणा से ही मैं यह संकलन प्रकाशित करने का साहस जुटा पाया हूँ।

—शूलपाणि

सी-५२, 'के' पार्क
महानगर विस्तार
लखनऊ

पतिव्रता

गोदावरी ने मुँह अँधेरे ही बावली में जाकर स्नान किया और थिर-कती हुई सामने की चोटी पर गाँव के मंदिर में जा पहुँची। साल भर से मन ही मन जो मनौती मनाती आ रही थी, वह आज पूरी हो गई थी। उसके गाँव के देवता का प्रभाव ही ऐसा है, इसीलिए तो दूर-दूर के गाँवों के लोग अपने देवताओं को छोड़ कर यहीं मनौती मनाने आते हैं। अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करने के लिए उसने बार-बार मूर्ति के सामने माथा नवाया। प्रतिज्ञा पूरी करने का वादा भी किया और जितने भी श्लोक तथा मंत्र उसे याद थे, उनका गदगद स्वर से ध्यान मग्न होकर पाठ करती रही।

पास ही पड़े एक पत्थर पर जब वह बैठी तो दूर हिमालय की बर-फीली चोटियाँ सूर्य के प्रकाश से उसे सोने की तरह चमकती नजर आईं। गोदावरी मंत्रमुग्ध-सी इस दृश्य को देखती रही। अब ये पहाड़, खेत, जंगल सभी उससे सदा के लिए छूट जाएँगे। कुछ ही दिनों में वह नीचे मैदान में जा पहुँचेगी। उसे रेल देखने को मिलेगी। कितनी लम्बी होती होगी वह? लोग कहते हैं कि दैत्य जैसा कोई इंजन उसे खींचता है। कैसा दीखता होगा वह? बताते हैं कि शहर में पैदल चलना ही नहीं पड़ता। बड़े-बड़े मकान आकाश को छूते हैं। अपने भाइयों को भी वह वहीं बुला कर पढ़ाएगी। वे वहीं नौकर हो जाएँगे। माँ-बाप भी वहीं आ जाएँगे। उस अनजानी अद्भुत दुनिया को अब वह कुछ ही दिनों बाद देख लेगी, इस विचार से वह पुलक उठी।

गोदावरी ने रात अपने कानों से पिता को उत्साह भरे स्वर में माँ से कहते सुना था, "गोदावरी की माँ, आप भला तो जग भला। कहने वाले भट्टजी को जो भी कहें, हमसे तो उन्होंने मित्रता ही निभाई है। गोदावरी का ब्याह पक्का कर आए हैं। कहते थे, 'आपका पुश्तैनी पुरोहित हूँ, गोदावरी पर मेरा भी हक है। वह कुलीन है। नौकरी मामूली है लेकिन ऊपरी आमदनी काफी है। एक पत्नी मर चुकी है। उम्र कुछ अधिक है इसीलिये जल्दी ब्याह करना चाहते हैं।' बोलो, तुम्हें क्या कहना है ?"

माँ के स्वर से लगता था वह खुशी के मारे बोल नहीं पा रही थी। पिताजी अपना निर्णय देते हुए बोले, "गोदावरी की माँ, इतना तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि उस वर के लिए शालिग्रामजी जीतोड़ कोशिश कर रहे हैं। दिमालो गाँव के उपाध्याय जी वर के सम्बन्धी हैं। कुलीनता के बारे में अब और क्या जानना बाकी था। मैंने हामी भर देने की सोची है।'

फिर उसने पिता को यह भी कहते सुना, "जिनकी पहली पत्नी मर जाती है, वे फिर स्त्री को चारपाई से जमीन पर पैर नहीं रखने देते। गोदावरी आराम से रहेगी। जवानी को क्या कोई चाट जाता है। गोदावरी की माँ, तुम जब यहाँ आईं, गोदावरी की तरह खिले फूल-सी लगती थीं। मेरी जवानी ने तुम्हें क्या दिया ? गरीबी में तुम भी पिस गईं।"

पिता और माता की आगे की बातें संकोच के मारे न सुन सकने से वह वहाँ से भाग खड़ी हुई।

गोदावरी को हरिप्रसाद की याद आई। देखने में कैसा सुन्दर है वह। कैसी भरी देह है। उम्र में उससे थोड़ा ही बड़ा है। उसे कितना चाहता है। कैसी तरसी आँखों से उसे देखता रहता है। उस दिन खेत से लौटते समय अकेला पाकर कह ही बैठा," तू डरना मत गोदावरी, मैं तुझे अंगुली से भी छुऊँ तो गौ का खून पिऊँ, पर मेरी बात सुन ले। फिर जैसा चाहे, करना। तू नहीं जानती, तू कैसी दीखती है। हमारे गाँव के झरने का पानी कैसा अच्छा लगता है ! वैसी ही तू भी है। मेरे पास खाने को बहुत है। तू बस आ जा। ब्याह की कहे तो ब्याह कर लें, भागने को कहे तो

भाग चलें ।"

उसकी वात सुन-सुन कर उसे कँपकँपी आ रही थी। कैसे चली जाए वह उसके साथ ? उसको कोई जात भी है। बाप जरूर कुलीन था। लेकिन नाचने गाने वाली हुड़काणी के मोह में पड़ कर उसी के घर में वस कर अछूत हो गया था। सभी ने उससे नाता तोड़ लिया। उसी अछूत के बेटे के साथ जाकर वह भी अछूत वन जाए ? सब उसके नाम पर थूथू करेंगे। माँ तो शायद प्राण ही त्याग दे। बहनें और भाई बिना ब्याह के पड़े रहेंगे। ना बावा, ऐसा कैसे कर सकती है ?

पिछले जन्मों के पाप से गरीव घर में जन्म लिया। पिता को मिलता ही कितना है ? माँ को एक आँख से दिखता नहीं। दूसरे से भी पानी चूता है। क्या करे, बेचारी। थोड़ी-सी खेती है। उसके लिए कभी पिता के साथ तो कभी भाई-बहनों को ले कर पौ फटते ही खेतों पर जाओ, सिर पर खाद ढोढो कर खेतों में डालो। दूर बावली से पानी लाओ। वरतन माँजो और फुरसत मिलते ही घास और सूखी लकड़ियाँ बटोर कर लाओ। कहीं चोटी पर से पाँव फिसला तो हड्डी के टुकड़े भी ढूँढ़े न मिलें। पिछले ही महीने हरूली कैसे गिर पड़ी थी। अब भूत वन कर घर वालों को सताती है। ना बावा, इस जन्म में वह कोई पाप नहीं करेगी। बिना जात वाले के साथ जाकर अगले जन्म में साँप, छिपकली, ही बनेगी। इतनी बार वह गरुड़ पुराण सुन चुकी है। पुराण क्या झूठ हैं ? नहीं। पति की उम्र कुछ ज्यादा है तो क्या, है तो कुलीन। रूप तो सब माया है। कुछ दिनों में खतम हो जाएगा। हाँ, सती-सावित्री की तरह पतिव्रता रह कर वह इस भव सागर से हमेशा के लिये पार हो जाएगी।

नीचे से आती हुई जोर-जोर की आवाजों से गोदावरी की तंद्रा टूटी। लोग पूजा करने चले आ रहे थे। वह तेजी से घर की ओर बढ़ी। वह ध्यान में पता नहीं कहाँ खो गई थी। सब उसका इंतजार कर रहे होंगे।

अपनी चिरप्रतीक्षित रेल की तीखी सीटी सुनते ही गोदावरी अपनी जगह से उचक पड़ी और फिर शरमा कर बैठ गई। एक धक्के के साथ

गाड़ी के चलते ही उल्टी दिशा की ओर भागते हुए पेड़ों, मकानों, खेतों और गांवों को देख वह खुशी से उछल पड़ी। कुतुहलवश वह दो-तीन बार झपट कर खिड़की तक गई, तो बाकी बैठे लोगों को अपनी ओर अजीब ढंग से घूरते देख वह सकपका गई। पहाड़ों पर तो जब जी चाहा झपक-लपक कर चली जाती थी। कोई इस तरह घूरता न था। डब्बे में उस के पीछे ही बैठे एक आदमी की आवाज भी उसके कान में पड़ी, "ठेठ देहातिन है, नई नई आई है।"

दुख से उस का सिर झुक गया। उस ने कनखियों से अपने पति की ओर देखा। वह उसे एकटक देखे जा रहे थे। उन की दृष्टि में कहीं भी सरसता नहीं थी। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह चुपचाप आंखें नीची कर अपने स्थान पर सिमट गई।

पति के साथ, उनके मकान में घूँघट काढ़े हुए प्रवेश किया तो गली की ओर से आने वाली बदबू से गोदावरी का सिर भन्ना उठा। पोपले मुंह पर गहरी झुर्रियों वाली एक बुढ़िया को देख कर वह समझ गई कि वही उसकी सास है। गोदावरी ने पैर छुए। उन की पीठ झुक चुकी थी, वह बहरी लगतीं थी और आँखों से भी उन्हें कम सुझाई दे रहा था। एक काले रंग की मैली-कुचैली धोती पहने अधेड़ औरत को दरवाजे से भीतर आकर अपने को गौर से देखते देख गोदावरी को अचंभा हुआ। वह औरत कोशिश करते हुए भी अपनी कुटिल मुस्कान छिपा नहीं पा रही थी। बाहर नम्र बने रह कर भी वह धृष्ट स्वर में बोली, "बहूजी, मैं महरी हूं। यहां सुबह-शाम बरतन मांजने आती हूं।" गोदावरी को वह औरत बड़ी विचित्र मालूम पड़ी।

सास ने खाना बना कर गोदावरी को भी परोसा। उसके खापी चुकने पर सास उसे ऊपर छोटी-सी छत पर धूप में ले गई। सास एक कोने में सो गई। वह बैठी सुस्ता ही रही थी कि उसे कुछ लोगों के हंसने और आपस में बातचीत करने की आवाज सुनाई दी। उस ने चौंक कर इधर-उधर देखा तो उसे सामने की छत पर दो आदमी उसकी ओर इशारा

कर हंसते-बोलते दिखाई दिए। एक तो उसे इस तरह घूर रहा था जैसे आँखों से उसे निगल ही जाएगा। वह सहम कर फौरन नीचे की मंजिल की ओर जाने लगी तो उसने एक दूसरे से कहते सुना, "ससुरा अब की पहले से भी बढ़िया माल लाया है। एक गई, दूसरी ले आया। कौन फांस लाता है इसके लिए ऐसा माल ?" दूसरे की भद्दी हंसी भी उसके कान में पड़ी।

गोदावरी नीचे आ गई। वहाँ की बदबू असह्य लगी तो कमरे के दरवाजे बंद कर चारपाई पर औंधी लेट गई। आँखों में आंसू उमड़ आए। पहाड़ों की याद आने लगी। खुली हवा में उन्मुक्त पक्षी की तरह जब चाहती खेतों पर, पेड़ों पर, चोटियों पर चहकती फिरती थी। यहाँ तो उसका दम घुट जाएगा। मैदान में आराम मिलने की कितनी बातें सुनी थीं उसने। यही है वह आराम ? भाग्य में यही बदा था क्या ? तभी तो पिताजी कहा करते हैं, "प्रारब्ध का लिखा कोई नहीं मिटा सकता। इस जन्म में कष्ट ही भाग्य में लिखा है शायद ! अब पाप से बची रहेगी तो अगला जन्म किसी रुपए वाले के घर ले कर ही सुख भोग सकेगी।"

गोदावरी ने अपना जीवन बिलकुल बाँध दिया। तड़के नहा कर पूजा करने बैठ जाती। झाड़ने-बुहारने, खाना बनाने के बाद जो भी समय मिलता, उस में वह भगवान का जप करती रहती। पति को हर तरह संतुष्ट रखने का प्रयत्न करती, यद्यपि उनके प्रति अपने अंतर में उपजी हुई विरक्ति के भाव को दबाना उसके लिए कभी-कभी बड़ा कठिन हो जाता। वह उससे स्नेह भी प्रकट करते तो उसे लगता कि उनकी आँखें निर्ममता से उसे घूर रही हैं। उसे बारबार यही आशंका होती मानो बाघ अपने शिकार को चमकती हुई आँखों से देखते हुए घात में है। ऐसा क्यों लगता है, वह समझ न पाती। सिर झटक कर वह इस विचार को दूर करने की कोशिश करती।

अपने को कोसती। आत्मग्लानि से मन मसोस कर रह जाती। यही सती धर्म है ! उसे पौराणिक स्त्रियों की याद आ जाती। धृतराष्ट्र की पत्नी

ने अंधे पति के कारण अपनी आँखों पर हमेशा के लिए पट्टी बांध ली थी। वह भी अपने पति के चेहरे की ओर न देखेगी। तब ऐसे कुविचार पैदा ही नहीं होंगे।

सास को कई दिन से बुखार था। महीने के आखिरी दिन होने से सामान भी चुकने लगा था। शाम को पति के लौटने पर वह सकुचाते हुए उनसे दवा और घर का सामान लाने के लिए कहने गई तो उन्होंने उसे दबोच कर इस तरह जकड़ लिया कि उसकी सांस घुटने लगी। पति की आँखें लाल थीं। उनके मुँह से बदबू आ रही थी। बड़बड़ा कर वह जो कुछ कह रहे थे, उसका मतलब गोदावरी समझ नहीं पा रही थी। वह बड़-बड़ा रहे थे, "तुझे यहाँ बदबू लगती है। तू फिकर मत कर। मैं तेरे लिए बंगला लूंगा...भला-बुरा कुछ नहीं होता। समझी...कुछ नहीं। जिससे रुपया मिले, वह काम अच्छा, नहीं तो बुरा...तू किसी चीज को बुरा न समझना। तभी मौज करेगी। एक बार ठीक हाथ पड़ने की देर है। एक-एक कर्जदार को चाँदी के जूते मारूँगा। हरामजादे कहीं के! अभी हाथ तंग है तो मुझे मामूली टुकड़खोर समझ लिया है। सबकी चमड़ी उधेड़ के रखूंगा...तू डरना मत। फिर देखना मुझे खुला महल मिलेगा और मुझे ...हा, हा, हा..."

पति को ठहाका मार कर हंसते देख गोदावरी डर गई। किसी तरह अपने को छुड़ा कर लौट आई। उसका सिर चकरा रहा था। मुँह से कितनी बदबू आ रही थी। अपने आपे में नहीं लग रहे थे। कह क्या रहे थे, भलाबुरा कुछ नहीं होता। तो फिर होता क्या है? होगा भी, उसने सोचा, दूसरा जो भी करे, वह पाप से बची रहेगी। बाकी जो भाग्य में होगा, वह होगा ही।

सुबह फिर कहने पर सास की दवा भी आई और सामान भी। लेकिन दूसरे दिन वह भी चुक गया। जब पहली तारीख की शाम को देर तक न तो खाने-पीने का सामान ही आया, और न पति ही आए तो गोदावरी बेहद परेशान हो उठी। अपने खाने की उसे कोई चिंता न थी। लेकिन

बुढ़िया सास कई वार रसोई की तरफ देख कर पूछ चुकी थी। न कहने पर किसी विचित्र पशु की-सी आवाज करते हुए वह लेट जातीं। गोदावरी को उस वुढ़िया पर वड़ा तरस आ रहा था। इसका भाग्य भी उसी की तरह फूटा था।

अंधेरा हो गया। पति अभी तक नहीं आए थे, उसका दिल धड़कने लगा। वाहर अचानक शोर सुन वह आशंकित हो उठी। कुछ लोगों को पति का नाम वारवार चिल्ला कर पुकारते सुन वह घवरा गई। दरवाजा खोल कर उसने धीमे स्वर में कहा ही था कि वह अभी नहीं आए हैं कि फिर शोर मच गया।

"अरे, हमसे बच कर जाएगा कहाँ? तव तो कहता था, वस यह आखिरी मुहलत है और अव गायव है। जहन्नुम में भी जाएगा तो भी ढूंढ कर अपने रुपए वसूल कर लूंगा।"

गोदावरी ने वाहर विजली के खंभे की रोशनी में देखा, एक मोटी तोंद का भारीभरकम व्यक्ति उसकी ओर घूरते हुए हाथ नचानचा कर गरज रहा था।

"भागेगा कहाँ, हम उसकी लाश से भी वसूल कर लेगा," दूसरा दाहिने हाथ का डंडा ऊपर घुमा कर कड़का। उसकी वेशभूषा और उच्चारण से गोदावरी को समझने में देर न लगी कि वह खान है। उसके मायके के गांव में ऐसे खान आते रहते थे।

'नईनई औरतें लाने को पैसा है, हमें देने को नहीं। एक को खा चुका है, अव दूसरी लाया है। जव कुर्की आएगी तव पता चलेगा,' तीसरा गुर्राता हुआ समर्थन के लिए दूसरे कर्जदारों की ओर मुड़ा।

पहले वाला तोंदियल लाला आवाज धीमी करके तृषित नजर से गोदावरी की ओर देखते हुए वोला, "कुर्की करने को इस भिखमंगे के पास होगा ही क्या? इस औरत से चाहो तो वसूल कर लें।'

गोदावरी स्तब्ध खड़ी थी। यह सव क्या है? उस रोज नशे में वे भी कर्जदारों की ही कुछ वातें कर रहे थे। वह कुछ समझ क्यों नहीं पा रही

है, आखिरी बात सुन कर तो वह शरम से वहीं गड़ी रह गई।

महरी आई ! यह सब दृश्य देख वह सारी बातें समझ गई। उसके लिए यह कोई नई बात नहीं थी। बायाँ हाथ कमर पर रख कर दाहिना हाथ हवा में घुमाते हुए अपनी तीखी कर्कश वाणी में सबको ललकराते हुए बोली, "बड़े मरद बनते हो, औरत जात पर धौंस दिखाते हो। यह हेकड़ी अपने घर की औरतों पर जमाओ।"

महरी की तेज आवाज सुन कर सब ने पीछे हटना ही उचित समझा लेकिन जाते-जाते धमकी दे गए, "बड़ी मदद करने वाली आई है उस उठाईगीरे की। ऐसी ही इज्जत है उसकी तो उससे हमारे रुपए दिलवा दे...कह देना उससे, कल तक हमारा रुपया न दिया तो उसकी खैर नहीं।"

गोदावरी सुन्न खड़ी थी। महरी को भीतर जाते देख वह भी भारी कदमों से उसके पीछे-पीछे चली गई। चौका खाली देख महरी का चेहरा गंभीर हो गया, 'क्यों, बहू, आज खाना नहीं बना ? आटा, चावल, दाल, सब निबट गया है ?'

महरी के पूछने के ढंग से गोदावरी को आभास हुआ कि उसे उस घर की सब जानकारी है। बहुत सँभल कर उसने थके स्वर में पूछा, "पहली बहू के वक्त भी कभी ऐसा होता था ?"

महरी ने सिर घुमा कर इधर-उधर देखा और उसके निकट खिसक कर आत्मीयता के स्वर में बोली, 'बहू, यहाँ सुबह चूल्हा जल जाए, तो शाम का कोई ठिकाना नहीं। शाम को जले तो सुबह जलेगा, यह भी ठीक नहीं।" महरी मुसकराई और उसने रहस्यपूर्ण ढंग से गोदावरी की ओर देखा।

गोदावरी पूछे बिना न रह सकी, "ऐसा क्यों होता है, महरी ?"

अब कनखियों से दरवाजे की ओर देखते हुए महरी उसके ओर निकट खिसक आई।

फुसफुसाते हुए बोली, 'तुम बहुत सीधी हो, बहू, अभी तुम्हें बाबूजी

की आदतों का पता नहीं चला ?"

गोदावरी का हृदय कांप उठा। पता नहीं महरी क्या कहने जा रही है। अब छिपाने को रह ही क्या गया था ? कर्जदार बाहर चौराहे से चिल्ला-चिल्ला कर सभी कुछ तो कह गए थे। दबी आवाज से बोली, "मुझे तो कुछ पता नहीं चला, महरी। उन पर इतना कर्ज है, यह भी अभी-अभी मालूम हुआ।"

"वहू क्या तुम्हारे घर वालों को सचमुच कुछ पता नहीं था ? इधर तो इनकी तरफ के लोग इनके पास भी नहीं फटकते।"

गोदावरी अपने हृदय की गहराइयों से अनायास ही उमड़ते हुए निश्वास को बरबस दबा गई। कंपित स्वर में बोली, "हमारे पुश्तैनी पुरोहित ने बताया था कि बड़ी आमदनी है इन्हें। यहीं कहीं रहते हैं वह।"

'अरे, वही पंडित होगा। रुपए खाकर शादी-ब्याह कराता है। आमदनी तो बहू बहुत है। इन्हीं के दफ्तर के बाबू बताते हैं। लेकिन यह सब रुपया जुआ और शराब में निकल जाता है।"

"जुए में, शराब में!" गोदावरी को धक्का-सा लगा। अपने गांव के ठाकुर को उसने इसी में उजड़ते देखा था।

"अभी नईनई आई हो, बहू, इसीलिए शायद बाबू घर पर आ जाते हैं। फिर तो हफ्ता-हफ्ता, दो-दो हफ्ता कहाँ रहते हैं, पता नहीं चलेगा। घर पर कर्जदारों की चिखचिख मची रहेगी। सड़क पर उनके डर से निकलना भी दूभर है इनके लिए।"

सड़क पर पति के साथ जाते समय उनका विचित्र व्यवहार भी गोदावरी की समझ में आने लगा।

"हमें तो बहू हमारा पैसा मिल जाता है, हम क्या कहें ? लोग तो पचास मुँह पचास बातें कहते हैं।"

"और क्या कहते हैं ?" गोदावरी गले तक दलदल में फँसे हुए व्यक्ति की तरह निराश स्वर में बोली।

"बहू, अब कौन जाने सच है कि झूठ, लोग कहते हैं इनके नौकर की

जवान औरत यहीं से गायब हो गई। नौकर रोत-रोता उसे ढूंढ़ता रहा, लेकिन वह न मिलनी थी, न मिली। लोग तो पहली वहू के मरने के भी अजीव-अजीब किस्से सुनाते हैं। अव यह न पूछो, क्या कहते हैं। वहू, तुम्हारे घर पर कुछ भी ठिकाना हो तो चली जाओ।''

गोदावरी चुप रही। उसका चेहरा एक दम पीला पड़ गया। आँखें सजल हो गईं।

महरी ने यह देखा तो सहानुभूति के स्वर में वोली,'' वहू, तुम पूजा-पाठ करती हो। सतीसावित्री हो। मैंने सोचा, तुम्हें सच वातें वता दूं लेकिन तुम्हारा दिल ही दुखता।''

गोदावरी दुख के सागर में डूवती-उतराती चुप बैठी रही। देर होती देख महरी उठ खड़ी हुई। ''इस वक्त तो यहाँ कोई काम नहीं है, वहू, दूसरे घर देख आती हूँ।''

बुढ़िया सास बारबार उठकर रसोई के कमरे की ओर सिर उठाती, कुछ सूँघने की कोशिश करती और लेट जाती। गोदावरी को न भूख थी, न प्यास। सारे शरीर में एक अजीव-सी थकान छाई थी। जी यही चाह रहा था कि वह चुपचाप लेटी रहे और कोई उससे न वोले। वह सोने के कमरे में चली गई। सिरहाने रखे विस्तर पर पीठ टिका कर उसने पैर फैला दिए। कब उसे झपकी आ गई, इसका उसे पता न चला। दरवाजा भड़भड़ाने की आवाज सुनकर हड़वड़ा कर उठ वैठी।

पति के पैर लड़खड़ा रहे थे। उनकी आँखें लाल थीं और मुँह से ऐसी तेज वदवू आ रही थी कि गोदावरी छिटक कर अपनी चारपाई पर जा गिरी। उसकी आँखों से नींद गायब हो चुकी थी। शून्य दृष्टि सामने दीवार पर जा टिकी। पति लडलखड़ाते हुए उसके पास ही जा पहुँचे। चेहरा सूखा हुआ, पीले गंदे दांत, आँखों से वासना वाहर फूटी पड़ रही थी। सारा शरीर पीपल के पत्ते की तरह काँप रहा था। गोदावरी का मन घृणा से भर गया। उसने मुँह फेर लिया। तभी उसे लगा मानो कोई बंद गंदा नाला एकाएक फट कर उसके ऊपर बह निकला हो। पति ने

उस पर गंदी गालियों की बौछार शुरू कर दी थी। नशे की झौंक में उनका स्वर कभी लड़खड़ाने लगता और कभी तेज हो जाता था।

घृणा और क्रोध का ऐसा उफान गोदावरी के हृदय में उठा कि उसे बेहद घुटन मालूम होने लगी। उसने पति की ओर पीठ करके पैर से मुंह तक चादर ढंक ली। तत्काल ही उसे ऐसा मालूम दिया मानो कोई जानवर अपने पंजों से उसके कपड़ों को नोंचे दे रहा हो। वह झपट कर उठ खड़ी हुई। देखा पति उसे निरावृत्त करने पर तुले हैं। वह क्रोध से सिर से पाँव तक सिहर उठी। उसने झटका देकर कपड़े को खींचा तो पति संतुलन न सँभाल पाने से जमीन पर औंधे गिर पड़े।

गोदावरी भय से कांप उठी। यह क्या कर बैठी वह ? पति को गिरा दिया ? कहीं कुछ हो न गया हो ? डरती हुई वह पति के पास पहुँची। वह नशे की झौंक में सो रहे थे। उस की नसनस में फिर घृणा व्याप गई। उन्हें उठाने को उसका जी न हुआ। जमीन पर ही दरी पर घुटनों में मुँह छिपा कर वह सिसक उठी। मायके वाले समझते होंगे, मैं यहाँ खुश हूँ। सोचते होंगे, मैं अपने स्वार्थ में उन सबको भूल गई हूँ। भाइयों को भी नहीं बुलाया। लेकिन वह अपनी दशा भी तो नहीं लिख सकती उन्हें। रोते-रोते मां की दूसरी आंख की रहीसही ज्योति भी चली जाएगी। पति को त्याग कर आई हुई जवान लड़की को मायके में कौन पसंद करेगा ? सब उसमें ही खोट बताएँगे। पिताजी के लिए सिर उठा कर चलना भी मुश्किल हो जाएगा। दूसरी बहनों की शादी भी न होगी। नहीं, उसे यहीं रहना है, चाहे जिए या मरे।

गोदावरी को लगा कहीं से अजीब-अजीब आवाजें आ रही हैं। वह अचकचा कर उठ बैठी। एक क्षण के लिए तय नहीं कर पाई कि वह जाग रही है या सो रही है। रात वह वहीं दरी पर ही सो गई थी। पति कमरे में न थे। कुछ लोगों में जबरदस्त झड़प होने की आवाज उसे सुनाई दी। पति की चीखती हुई आवाज भी उसने सुनी। तत्काल ही ये आवाजें आपने आप धीमी पड़ गई। फिर कुछ लोगों की दूर हटती हुई आवाजें सुनाई

देने लगीं। "हम बहुत बेवकूफ बन चुके हैं। हम से बच के अब तुम कहीं नहीं जा सकते। आज दफ्तर में रुपया न मिला, तो हम से बुरा कोई न होगा।'

अगलबगल के मकानों की खिड़कियां बन्द होने के साथ वहां के रहने वालों की खीजभरी आवाजें भी सुनाई दी। "कैसा लफंगा आ बसा है इस मुहल्ले में! जब देखो, कर्जदारों से झगड़ा-फसाद। देने को गांठ में कौड़ी नहीं, कर्ज लेते जा रहे हैं जैसे कहीं के राजा हों।" सामने सीढ़ी पर खुलने वाले दरवाजे के जोर से भेड़े जाने की आवाज सुन उसकी चेतना लौट आई। आंगन में काफी उजाला हो गया था। पति चले गए थे।

बैठेबैठे पैर दर्द करने लगे तो गोदावरी बाहर आ गई। सूरज ठीक सिर के ऊपर आ चुका था। उसने सास की कोठरी की ओर ताका। बुढ़िया अपनी चारपाई पर बारबार करवटें बदल रही थी। भूख की तड़प के कारण वह बेहाल मालूम दे रही थी।

गोदावरी का मन खिन्न हो उठा। उठ कर अपने कमरे में लौट आई। दीवार से पीठ सटा कर बैठ गई। ध्यान बंटाने के लिए अपनी उदास दृष्टि खिड़की के बाहर सामने की दीवार पर केन्द्रित करने की कोशिश कर ही रही थी कि महरी की आवाज कान में पड़ी, "क्या सोच रही हो बहू, बाबूजी की खबर सुनी तुमने।"

गोदावरी को लगा जैसे कोई उसके हृदय पर हथौड़े से चोट कर रहा हो। अब क्या खबर लाई है यह? प्रश्न भरी आँखों से उसने महरी की ओर देखा। वह कुछ बातें कह देने के लिए उतावली थी। गोदावरी ने पूछना चाहा लेकिन होंठ हिल कर रह गए।

अपनी बात का इतना अधिक प्रभाव देख महरी उत्साह से बोली, "सुना है, बाबूजी बड़ी परेशानी में फँस गए हैं।"

गोदावरी का चेहरा पीला पड़ गया। वह एकटक महरी के मुँह की ओर देखती रह गई मानो उसके एकएक शब्द पर उसके भाग्य का निर्णय होने वाला हो। महरी अपनी बातों के महत्व को अनुभव करके गोदावरी

पर अहसान जताती हुई बोली, "वहू, मैं अभी वावू किसनलाल के यहाँ चौकावासन करने गई थी। वह चाय पीने घर आए थे। वता रहे थे कि वावूजी घूस लेते हुए पकड़े गए हैं। अफ़सर वड़ा ही खराब आदमी है। खुद भी घूस खाता है लेकिन इन्हें यों ही नहीं छोड़ेगा।"

गोदावरी को फिर भी गुमसुम देखा तो अपनी बात को स्पष्ट करते हुए वोली, "वहू, किसनलालजी कहते थे कि वावूजी को जेल हो जाएगी। तभी तो मैं कहती हूँ, वहू, तुम्हारे मायके में कुछ भी सहारा तो चली जाओ। यहाँ अपनी कितनी दुर्गति कराओगी।"

जेल हो जाएगी ? वह मायके चली जाए ? कहाँ ? मायके ? गोदावरी को लगा, उसके सोचने-समझने की शक्ति लुप्त होती जा रही हैं। आँखें मुंदी जा रही हैं। सिर को दोनों हाथों में पकड़ कर बैठी रह गई। महरी अपना कोई काम न देख चली गई।

दरवाजे पर फिर खटका हुआ। गोदावरी ने चौंक कर सिर उठाया। अव कौन आया ? पति के साथ दो मजदूर थे जिनके सिर पर सामान लदा था। गोदावरी ने कई बार आँखें झपका कर देखा। कहीं वह स्वप्न तो नहीं देख रही है। पति उसके पास ही चले आए। उनकी पथराई हुई आँखों की क्रूर दृष्टि आज कोमल थी। स्वर भी स्नेहपूर्ण था। "जाओ, खाना वना कर खा पी लो।"

गोदावरी अपने इस सौभाग्य पर विश्वास नहीं कर पा रही थी। उसे रात का दृश्य याद आ रहा था। महरी की वातें भी संदेह उत्पन्न करने लगीं। तभी एक और संदेह अनायास ही मन में जागा। कहीं महरी ने ही तो झूठी बातें गढ़गढ़ कर उसे नहीं सुनाईं। छोटी जात है, उसका क्या भरोसा ! यहाँ की सारी बातें जानती ही है।

कहीं ऐसा न हो कि पति किसी परेशानी में फँसे हों, किसी कारण से अपनी परेशानी उसे न बता पा रहे हों और यह महरी किसी मतलब से उसे धोखा देना चाह रही हो। परेशानी में आदमी शराब भी पी लेता है। नोकरी न मिल पाने पर उसका ही मामा कहीं से दारू पी कर

पागल नहीं हो गया था ? पूरे गाँव के लिए उसे सँभालना मुश्किल हो गया था। उसे पति से स्वयं बातें करनी चाहिए थीं। तब अपने आप ही सब बातें सही-सही मालूम हो जातीं। आगे वह ऐसा ही करेगी। महरी को कतई बीच में न पड़ने देगी। पति से कोई बात छिपाना भी तो पाप है।

सबको खाना खिला चुकने पर गोदावरी ने महरी की सभी बातें पति को बता दीं। उन्होंने उसकी पीठ पर स्नेह से हाथ रखा और पहले से भी कोमल वाणी में बोले, "छोटी जात है न। ऐसी ही बातों में लगी रहती है। दूसरी आएगी तो वह भी ऐसी ही होगी। इसकी बातें मैं सुनी-अनसुनी कर देता हूँ। क्या बताऊँ, पहली पत्नी की बीमारी में कर्ज हो गया था। उसे चुकता करने में यह तकलीफ हो गई। आज कोई और चारा न देखा तो फंड से जमा रुपया निकाल कर सबका चुकता कर दिया है। तुम्हें भी इतना कष्ट हुआ। अब नहीं होगा।"

गोदावरी ने संतोष की सांस ली। पति वेदनापूर्ण स्वर में बोले, "तुम से मैंने कहा नहीं। इन कर्जदारों के मारे मेरा रास्ता चलना मुश्किल हो गया था। मेरी नौकरी खत्म करा कर मुझे भूखे मारने पर तुल गए थे ये लोग। इसी परेशानी में कल कुछ पी भी बैठा था मैं। पता नहीं तुमने अपने मन में क्या सोचा होगा। बात यह है, कुछ घबरा गया था मैं···यह तो कहो, बड़े अफसर बहुत मानते हैं मुझे। उनके सामने इन कर्जदारों की बिलकुल भी न चलने पाई, नहीं तो सचमुच भूखों मरने की नौबत आ जाती। जानती हो, इन अफसर की क्या तनख्वाह है ?"

गोदावरी के हृदय में उस अनदेखे अफसर के प्रति कृतज्ञता और पति के प्रति सहानुभूति उमड़ने लगी। कल रात पति का पी कर आना भी समझ में आ गया। मन ही मन वह पति के इस अज्ञान पर हँसी कि किसी अफसर की तनख्वाह वह क्या जाने।

उसने जिज्ञासा से अपनी ममता भरी दृष्टि पति की ओर मोड़ी लेकिन यह देखकर उसके मन को हलका-सा धक्का लगा कि पति की

आँखों में अब भी वह स्नेहसिक्त सरसता नहीं है जिसकी वह आशा कर रही थी। उनकी दृष्टि ही ऐसी होगी, उसने सोचा। अपने भ्रम पर उसे झुंझलाहट हुई।

"सोचो, हर महीने तीन हजार पाते हैं, तीन हजार! समझीं! बड़ी-बड़ी जगहों में इनके नाते रिश्तेदार, दोस्त हैं। दफ्तर का बाबू हो या अफसर, पत्ते की तरह काँपता है इनके सामने। किसी ने चूँ की नहीं कि उसकी नौकरी गई। लेकिन जिन पर मेहरबान रहते हैं, वह सात खून भी कर आए तो माफ़। यह जिसके लिए भी चाहें, दिन को रात और रात को दिन बना सकते हैं। कागजपत्र का ऐसा झमेला कर देते हैं कि बड़े से बड़ा तीसमार खाँ भी आ जाए तो झख मारता रह जाए। सभी जानते हैं, इन्हें नाराज करना काल को छेड़ना है···मुझे बिलकुल अपना भाई मानते हैं। मेरी उनके सामने हस्ती ही क्या है! एक सौ बीस तनख्वाह में पैंतालीस तो इस सड़े मकान के ही देने पड़ते हैं। बस उनकी कृपा रहेगी तो ऊपरी आमदनी से खाना-पीना आराम से चलता रहेगा। वैसे वे चाहें तो आज ही पुलिस के हवाले कर दें।"

गोदावरी का मन पति के प्रति श्रद्धा से झुक गया। बताओ, इतना बड़ा अफसर इन पर खुश है। काम में कितने होशियार होंगे यह! बेचारों ने कर्ज से दब कर कुछ दिनों के लिए बहुत कष्ट उठाया। वह कुछ और ही समझ बैठी थी।

पति अपनी ही भावनाओं में उलझे हुए फिर बोले, "मैं सोच रहा हूँ, जब मैंने गृहस्थी बना ली है, तो इन साहब के रहते इतना इंतजाम तो कर लूँ कि आगे के लिए फिक्र न रहे। तुम भी आनन्द से रहोगी, मैं भी।" फिर जैसे उन्हें अचानक याद आया हो, बोले, "अरे, हाँ, उनकी पत्नी तुम्हें देखने के लिए कई बार कह चुकी हैं। वह भी साहब की तरह मुझे अपना भाई मानती हैं। तुम्हारी ही तरह पूजा पाठ वाली हैं। पहले भी कई बार कह चुकी थीं। अभी उन्हीं के यहाँ से लौट कर आ रहा था तो उन्होंने आज के लिए वादा करा ही लिया। इतने बड़े घर की हैं। उन्हें

नाराज करना ठीक नहीं। वैसे वह इतनी सीधी हैं कि खुद ही यहीं आ जाए...लेकिन..."

गोदावरी को यह बात इतनी असम्भव लगी कि उसने अनायास ही अपना संकोच भूल कर इनकार में जोर से सिर हिला दिया, "न, न, यह कैसे हो सकता है? इतने बड़े अफसर की औरत इस घर में किसी तरह नहीं आ सकतीं। क्या सोचेंगी वह हमारे बारे में? पर वह उनके यहाँ जाकर क्या बातें करेगी? बड़े लोगों से कैसे बातें की जाती हैं, यह वह क्या जाने! कहीं वे उसे जंगली न समझें। मुझे तो यहाँ की बोलचाल भी नहीं आती।"

पति कुछ अधीरता से उसकी बात काटते हुए बोले, "अरे, नहीं, तुम्हें देख कर वह बहुत खुश होंगी। तुम क्या देखने में कम सुन्दर हो जो अपने को इतना तुच्छ समझती हो। फिर, उन्हें अपने ही इतने काम रहते हैं कि तुम्हारी छोटी-मोटी गलतियों को देख भी न पाएँगी। हाँ, उनके पास पहुँचते ही मुसकराते हुए हाथ जोड़ कर नमस्ते जरूर करना। अगर साहब उधर से निकलें तो खड़े होकर उन्हें भी नमस्ते जरूर कर लेना। मुझको मानते हैं, इसलिये तुमको बुलाया है। दूसरों की तो परछाईं भी नहीं फटक सकती वहाँ। बड़े लोगों के यहाँ कभी-कभी आते-जाते रहना चाहिये। नहीं तो जरूरत के वक्त किसके पास जाएँगे। अब तो तुम्हें भी, मुझे भी इस घर की भलाई देखनी है।"

गोदावरी गदगद हो उठी। अब किसी प्रकार का कोई भी संदेह मन में नहीं रह गया था। इतने बड़े घर की स्त्री से मिलने में भय और संकोच लग रहा था लेकिन मन ही मन निश्चिंत भी थी कि पति साथ में तो रहेंगे ही। कोई गलती होगी, तो फौरन सुधार देंगे। धीरे-धीरे वह भी यहाँ की सभी बातें सीख लेगी।

महरी की बातों पर विश्वास कर पति पर कुढ़ते रहने के लिए गोदावरी को बड़ा पश्चाताप होने लगा। उसने मन ही मन भगवान से क्षमा माँगी। अब वह उनकी तन मन से सेवा करती रहेगी। मायके को भी

अपनी खुशी का पत्र भेजेगी। एक भाई को तो बुला ही लेगी। पति इनकार नहीं करेंगे। फिर भी पूछ तो लेना ही चाहिए। उठते हुए संकोच भरे स्वर में बोली, "मैं यहाँ अकेली रहती हूँ, आप कहें तो अपने छोटे भाई को बुला लूँ?"

पति प्रसन्न हो कर बोले, "हाँ, हाँ, बुला लो। तुम्हारा साथ हो जाएगा। अकेले तुम्हारा मन भी नहीं लगता होगा। आगे और लोगों के यहाँ भी चला करेंगे। परेशानी में मैं अब तक सब भूला रहा। हाँ, अब चलो, जल्दी तैयार हो जाओ। कहीं उनकी पत्नी बाहर न चली जाएँ। बेकार में इंतजार करना पड़ेगा।"

गोदावरी को लगा कहीं खुशी के कारण वह पागल न हो जाए। कैसा चमत्कार हो रहा है आज। पति के साथ जाते हुए उसे संकोच जरूर हो रहा था लेकिन जाने से इनकार करके उन्हें नाखुश करना नहीं चाहती थी।

पति के साथ वह जिस मकान में पहुँची, उसकी फुलवाड़ी ने उसे मुग्ध कर दिया। हरी-हरी दूब और रंगबिरंगे फूल बड़े लुभावने लग रहे थे। अब उसकी समझ में आया कि लोग इसी मैदान की तारीफ करते होंगे। मकान पुराना होने पर भी शानदार लगता था लेकिन जिन सीढ़ियों से हो कर पति उसे ले गए वे इतनी खड़ी थीं कि दरवाजे के पास पहुँचने पर नीचे देखते ही उसकी आँखें चकरा गईं। उसने सोचा, इस घर से घनिष्टता होने के कारण ही पति शायद मकान के पिछवाड़े से जा रहे हैं। कमरा सजा हुआ था। पति के कमरे के भीतर झाँकते ही एक आदमी की रोबदार आवाज आई, "अन्दर आ जाओ, कृपाल दत्त।"

गोदावरी समझ गई, यही साहब होंगे। पति के साथ भीतर जाते समय उसके पैर काँपने लगे। उनके इशारा करने पर ही उसे अचानक याद आया कि दोनों हाथ जोड़ कर नमस्ते करने को उन्होंने कहा था। उसने ऊपर को दोनों हाथ उठाये तो सिर शरम से झुक कर छाती पर

लग गया।

साहब जोर से हँसते हुए बोले, "नमस्ते; नमस्ते, बैठिए। कृपाल दत्त इन्हें कुरसी पर बैठाओ। यह बिचारी तो शरम से एकदम दोहरी हुई जा रही हैं।"

पति ने उसे अपने बगल की कुरसी पर बैठाया। मेज की दूसरी ओर साहब बैठे थे। नाकनक्श सुन्दर होने पर भी उनकी आँखों में पता नहीं कौन सी ऐसी चीज गोदावरी को दीखी कि उसका मन वहाँ से हट जाने को हुआ। साहब मुसकराते हुए बोले, "तुम लोग घर से ही आ रहे होगे; काफी दूर होगा यहाँ से ?" गोदावरी ने पति को जिस तरह घिघियाते हुए उत्तर देते देखा, वह उसे अच्छा न लगा।

साहब ने मेज के दराज से चाभी का गुच्छा निकाल कर गोदावरी के पति के सामने फेंकते हुए कहा, "प्यास लगी होगी तुम लोगों को। लो, तीन गिलास भरो।"

पति ने तीन गिलास भरे और सबके सामने रख दिये। साहब और उसके पति गिलास मुंह से लगा कर धीरे-धीरे पीने लगे लेकिन वह शरम से इतनी गड़ गई कि अपने सामने रखे गिलास पर हाथ भी न लगा पाई। वह किसी तरह भीतर साहब की पत्नी के पास चली जाना चाहती थी। वहाँ इतनी शरम तो न रहेगी। साहब ने मुसकरा कर उसे एक दो बार याद दिलाया लेकिन उसका संकोच देख हँसते हुए उसके पति से बोले, "यह तो ज्यादती है कि हम पीते जाएँ और ये बेचारी सूखे मुंह बैठी रहें।" फिर उठते हुए बोले, "अच्छा, मैं जरा बाहर बरामदे में जा कर टहलता हूँ।"

पति ने फुसफुसाते हुए गोदावरी से कहा, "यह क्या कर रही हो ? यह अर्क है। बड़े लोगों के यहाँ यही पिया जाता है। न पीने से वे तुम्हें देहातिन समझेंगे। अभी उनकी पत्नी यहीं आ जाएँगी, वह क्या सोचेंगी। फिर तुम उन्हीं के साथ भीतर चली जाना।"

वह फिर भी मुंह नीचा किए हुए वैसी ही बैठी रह गई। गिलास मुँह से न लगा सकी। पति अत्यंत रुष्ट होने लगे तो आखिर उनका मन रखने के लिए वह सारा गिलास एक ही घूंट में निगल गई। गले से पेट तक एक हलकी-सी जलन महसूस हुई। उसने सोचा, यहाँ ऐसी ही चीजें पीने का रिवाज होगा।

कुछ ही पलों में उसे ऐसा मालूम देने लगा जैसे सामने की मेज, कुरसियाँ और दीवारों को पंख लग गए हों। चारों ओर सुहानी हवा चल रही है और सब ओर आनन्द ही आनन्द है। उसने मन को काबू में करना चाहा लेकिन वह उड़ कर कहीं का कहीं चला जा रहा था।

साहब लौट आए और उसके पति से दाहिनी ओर हाथ का इशारा करके बोले, "जरा, बाहर जा कर देखिए, मेम साहब बुला रही हैं।"

पति देखने गए। गोदावरी ने खट की आवाज सुनी। झूमता हुआ सिर ऊपर घुमाया तो देखा पति जिधर से उसे भीतर लाए थे वहीं से बाहर चले गए थे और दरवाजा बंद कर दिया था। वह घबरा कर उठने लगी तो सिर इतनी जोर से चक्कर खाने लगा कि वह लड़खड़ा उठी।

साहब ने भीतर से चटखनी लगा दी और उसके बगल की कुरसी पर बैठते हुए बोले, "घबराओ मत। कोई आएगा नहीं। तुमने अच्छा किया अपने पति का कहना मान कर यहाँ आ गई। मुझे तुम्हारी जैसी खूबसूरत और शरमीली औरत बहुत पसंद है। तुम्हारे पति को अब कोई नुकसान नहीं पहुँचेगा। अच्छी खासी रकम उसने आज हथियाई है। तुम इस तरह यहाँ आती रहना। खूब मनमाना रुपया मिलेगा तुम्हें…"

गोदावरी का सिर बेहद चकरा रहा था। उसे कुछ भी सुनाई न दे रहा था। सिर्फ मच्छरों की भिनभिन-सी आवाज कानों में पड़ रही थी। एकाएक पीठ पर हाथ फेरे जाने पर क्षण भर के लिए उसकी चेतना जागी। यह सब क्या हो रहा है? पति का पिछली रात का भयानक रूप भी दिमाग में घूम गया। तब वह कपड़ा झटक कर बच गई थी। आज…

उसने उठने की कोशिश की, लेकिन सिर और पैर दोनों ने साथ न दिया।

सुबह दरवाजे पर दस्तक हुई। साहब ने चटखनी खोल दी। गोदावरी का माथा इतने जोरों से झनझना रहा था जैसे कोई उसकी नसनस को खींच रहा हो। पति को खीसें निपोरते हुए अपने पास आते देखा तो उसका तनबदन जल उठा। यह पति है या राक्षस? वह दांत पीसते हुए दरवाजे की ओर बढ़ गई। पति ने सामने आ कर उसकी बाँह खींचते हुए धीमे स्वर में उसे टोका, "इस तरह जाने से साहब क्या कहेंगे? उन्हें नमस्ते कहो।"

उनकी लड़खड़ाती जबान और मुंह से आती हुई महक गोदावरी से छिपी न रही।

उसकी आँखों से अंगारे बरसने लगे। उसे सैकड़ों कीड़े-मकोड़े बाँह पर रेंगते हुए प्रतीत हुए। फुफकार-सी मारते हुए उसने पति को जोर से एक धक्का देकर बाँह छुड़ा ली। लेकिन उन्हें पैर उखड़ जाने से पीछे की ओर गिरते देख उसकी आँखें फैली की फैली रह गईं। उसके मुंह से चीख निकल गई।

पति के तेजी से लुढ़कने की आहट के साथ साहब का बदहवास होकर नीचे जाना और उतनी ही तेजी से दौड़ कर वापस आना उसने स्तब्ध दृष्टि से देखा।

"हत्यारिन! मार डाला उसे! जा, भाग जा यहाँ से। उसका सर फट गया है। तू फौरन भाग। सड़क के लोग इधर देखने लगे हैं। यहाँ रह कर अब मुझे भी फँसाएगी। जा, जल्दी निकल जा। लोग समझेंगे कि पैर फिसलने से मर गया। चल, निकल, नहीं तो तू भी फँसेगी। वक्त बिलकुल नहीं है। जल्दी निकल। निकल। नहीं निकलेगी तो जबरदस्ती बाहर कर दूंगा।"

वह निकल जाए? चली जाए? भाग जाए? कहाँ भाग जाए? कौन दबी, घुटी और घबराई आवाज में यह सब कह रहा है, गोदावरी

कुछ समझ न पाई। उसकी चेतना लुप्त हो चुकी थी। पर तभी उसे प्रतीत हुआ कि कोई उसे दोनों बाहुओं से जकड़ कर दरवाजे की ओर घसीटना चाह रहा है।

घायल शेरनी की तरह विफर कर उसने पीछे की ओर देखा। साहब पर नजर पड़ते ही उसके नथुने फड़कने लगे। साँस धौंकनी की तरह चलने लगी। सामने की चीजें ओझल होती हुई लगीं। उसे अपनी सुध न रही। लगा, जैसे वह पहाड़ के जंगल में खड़ी है। बड़े जोर का तूफान आ गया है और वही काले फन वाला साँप, जिसे अचानक आमना-सामना हो जाने पर उसने मार डाला था, आज उसका पूरा शरीर लपेटे हुए फिर अपना फन उसकी ओर बढ़ा रहा है।

हुंकार-सी भरते हुए वह तन कर सीधी खड़ी हो गई और सिर को उसने पीछे की ओर इतनी जोर से झटका कि साहब बुरी तरह कराह उठे। उनकी नाक से खून बहने लगा।

वह नागपाश से छूट गई। लेकिन अभी पूरी सांस भी न ले पाई थी कि दोनों गालों पर तड़ातड़ थप्पड़ों की मार से वह तिलमिला उठी। उसका सारा अंतर अपमान की असह्य ज्वाला से सुलग उठा और हृदय में उफनते हुए क्रोध से वह पागल हो उठी। आँचल गिर जाने से बाल बिखर गए। दाँत भिच गए। चेहरा तमतमा उठा। आँखें मानो बाहर को निक-लना ही चाह रही थीं। सामने स्टूल पर रखी बोतल को उठा कर उसने पूरी ताकत से साहब के सिर पर दे मारा। उन्हें लड़खड़ा कर गिरने के बाद उठने की कोशिश करते देख वह स्टूल को ही उठा कर उन पर टूट पड़ी। उन्होंने डगमगाते कदमों से फिर उठना चाहा तो उसने उन्हें दोनों हाथों से बाहर की ओर धकेल दिया। और तब नीचे सीढ़ियों से आती हुई तीखी चीख सुन उसे होश आया।

उसके पैर कांपने लगे। आँखों के आगे अँधेरा छा गया। चक्कर खा कर वह वहीं फर्श पर घुटनों पर सिर रख कर बैठ गई।

लोगों के तेजी से दौड़ने और जोर-जोर से बोलने-पुकारने की आवाजें कहीं दूर से आती हुई उसे सुनाई दीं। सीढ़ियों पर तेज कदमों की आहट भी उसने सुनी लेकिन उसके लिए अब जैसे किसी चीज का कोई महत्त्व नहीं रह गया था। बांहें खींची जाने का आभास होते ही उसने सिहर कर ऊपर की ओर देखा। उन लाल साफों को वह पहचानती थी। शून्य दृष्टि से उन्हें देखते हुए वह उठ खड़ी हुई। ●

फल के दावेदार

आफिस में बड़ी सनसनी और बेचैनी फैल गई। ऐसी अनहोनी बात आज तक नहीं हुई थी। नीचे के अफसर बाबुओं को अक्सर बुलाते रहते थे। यह रोजमर्रा की बात थी। लेकिन संयुक्त सचिव फोन पर गुस्से में अधीक्षक से दोनों बाबुओं को सीधे अपने यहाँ भेजने के लिए कहें, ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। क्या गलती हुई होगी, कैसे हुई होगी, क्या होगा इन दोनों का, सब सहमे-सहमे सोचने लगे। इस भयानक संकट से अपने बचे रहने की खुशी भी वे दिल-ही-दिल में महसूस कर रहे थे।

संयुक्त सचिव श्री दरबारीमल कानूनगो के पद से तरक्की करते-करते इतने ऊँचे पद पर पहुँचे थे। उनका इतना ऊपर उठना केवल भाग्य के बल पर हुआ, ऐसा उनके कट्टर दुश्मन भी नहीं कह सकते। भाग्य ने तो केवल इतना ही किया कि सफलता का महान गुर उनके सामने प्रकट कर दिया। उस गुर को उन्होंने समझा और कभी हाथ से नहीं जाने दिया, यह उनकी कर्मठता ही मानी जायेगी। जिस घर में श्री दरबारीमल जी का जन्म हुआ उसे न बहुत गरीब ही कहा जा सकता था, न अमीर। इसका प्रभाव भी दरबारीमल जी पर कुछ इस प्रकार का पड़ा कि बड़े साहब उन्हें देवतातुल्य दिखाई देते थे लेकिन अपने से कुछ ऊपर या बराबर के ओहदे-दार उन्हें बहुत तुच्छ प्रतीत होते। अनजाने में ही वे उनके साथ ऐसा

व्यवहार कर बैठते जिससे स्पष्ट झलक जाता कि वे उनकी कतई परवाह करना नहीं चाहते। वदले में उनसे भी तिरस्कार, अवहेलना या घुड़की पा जाते तो मर्माहत हो उठते और कभी स्वयं वड़ा साहव वन कर इन लोगों पर हावी होने की सुमधुर कल्पना में डूब कर अपनी मर्म व्यथा को भूलने का यत्न करते रहते।

ऐसे ही एक मौके पर तहसीलदार की डांट न सह सकने से दरवारी-मल जी उससे भिड़ गये। उनकी नौकरी पर आ बनने वाली थी कि यहाँ पर भाग्य उनका साथ देकर वड़े साहव को दौरे पर वहाँ ले आया। दरवारीमल जी साहव की दिन-रात सेवा-टहल में इतने लीन हो गये कि दूसरे ताकते रह गये। साहव की आँखों में उन्हें एक विशेष तृष्णा हिलोरें लेती हुई-सी प्रतीत हुई तो उन्होंने उसकी पुष्टि वड़े कौशल से उनके अहल-कार से की और सुरा के साथ उसकी पूर्ति की व्यवस्था करने में किंचित मात्र भी कोताही नहीं की। साहब के चेहरे पर परमतुष्टि का भाव देख वे समझ गये कि उनकी सेवा सार्थक रही है। साहव के जाते समय पास में कोई आदमी न देख उन्होंने उनके जूते अपनी धोती से पोंछ उन्हें अपने हाथों साहव के पैरों में पहना देने में भी तनिक संकोच नहीं किया। तहसी-लदार वगैरह ठंडे पड़ गये और कुछ ही अर्से बाद विना किसी पूर्व संभा-वना के उनकी तरक्की का कागज भी आ गया तो सफलता का असली गुर भी उनके दिमाग में उतर आया।

भाग्य उनके अनुकूल बना रहा और उसने उनके सामने एक और ऐसा अवसर लाकर उपस्थित कर दिया जिससे सफलता की असली कुंजी ही उनके हाथ में आ गई। उनके जिले के नामी नेता, जिनकी पहुँच ऊपर नीचे सभी जगह थी, अपने एक काम से उनके पास पहुँचे। दरबारीमल जी को अपने यहाँ वुलवा भेजने के वजाय उनके ही यहाँ आकर नेता जी ने उनको जो सम्मान प्रदान किया उससे वे पुलकित हो उठे। काम संकट-पूर्ण था लेकिन न करने पर और भी वड़ा संकट सिर पर आने का भय था। दरबारीमल जी में वुद्धि और कर्मठता दोनों की कमी नहीं थी।

उन्होंने खुद वह काम न करके अपने मातहत के लोगों से अपने रोब और आतंक के बल पर उसे करा दिया। उन्हें बिना किसी पूर्वानुमान के जल्द ही दूसरी तरक्की मिली तो ऊपर चढ़ने की सीढ़ी ही उनके हाथ आ गई।

अब वे जिस पद पर भी रहते ऊपर वालों की सेवा में उतना ही तल्लीन हो जाते जितना भक्त ब्रह्म में रहता है। लेकिन नीचे वालों की ओर नजर मुड़ते ही उनका चेहरा घृणा और क्रोध से विकृत हो जाता। उन पर अपना पूर्ण अधिकार जमाये रखने के लिए उन्हें कारण होने या न होने पर भी तिरस्कृत करते रहते जिससे वे उनके सामने दबे-कुचले पड़े रहें। इससे ऊपर वालों के पास घंटों अदब-कायदे से बैठे रहने से उनकी नसों पर आया हुआ तनाव भी दूर हो जाता और उनमें अद्‌भुत आनन्द-रस प्रवाहित होता हुआ प्रतीत होता।

दरबारीमल जी जिस कार्यालय से तरक्की पा कर जाते वहाँ दीपावली का-सा प्रकाश फैल जाता और जहाँ वे पहुँचते वहाँ अमावस्या की अंधेरी रात उतर आती। दरबारीमल जी को इसका आभास था और वे इसे अपने शासन की कुशलता मानते थे। नीचे के कर्मचारी कितना ही बच कर क्यों न चलते, उनमें से शायद ही कभी कोई उनकी क्रोधाग्नि से झुलसने से बच पाया। हर एक का कैरेक्टर रोल इतना रंग जाता कि जिंदगी भर वह तरक्की के लिए तरसता रह जाता। एक बाबू ने एक बार पागल होकर उन पर आक्रमण भी कर दिया। लेकिन दरबारीमल जी अपने मार्ग पर सदा डटे रहे।

जिन दो बाबुओं को बुलाया गया था उनमें कमला प्रसाद अपने भोलेपन के कारण ही फंस गया था। 'बाबू' शब्द का वह मानों मूर्तरूप था। एक दीनहीन दयनीय प्राणी। दफ्तर आते ही अधीक्षक की मेज तक सिर झुका कर उन्हें नमस्कार करता। फिर हर एक बाबू को प्रणाम करता हुआ अपनी सीट पर बैठ जाता। नौकरी करते-करते पन्द्रह-बीस वर्ष बीत जाने पर भी उसके धीर-गम्भीर चेहरे और संतोषी स्वभाव में किसी ने कोई परिवर्तन आते नहीं देखा। सिर्फ स्वराज्य मिलने के बाद एक परिवर्तन

उसकी वेषभूषा में यह हुआ कि उसने मिल का बना कुर्ता-पायजामा छोड़ कर, खादी का स्वच्छ श्वेत कुर्ता, पायजामा, टोपी पहनना शुरू कर दिया। सिर पहले की तरह घुटा रहता। उसका यह वेष-परिवर्तन दफ्तर में बाबुओं के दैनिक मनोरंजन का मुख्य साधन बन गया था।

"यार, है यह बिलकुल बांगड़ू। इन कपड़ों में बिलकुल दिल्ली का नेता लगता है। दूसरा कोई होता तो ऊपर कहीं हाथ मारता। यह घोंघा ही बने रहने में मगन है।" एक बाबू चुटकी लेते हुए इतनी जोर से कहता मानो वह कोई नई खोज कर लेने पर खुशी से भरा हुआ किलकारी मार रहा हो।

"अमा यार, भाषण देना सीख ले तो चुनाव में हर जगह इसकी ही मांग रहेगी। बाकी इसके सामने पानी भरेंगे, पानी।" दूसरा अपनी फब्ती पर खुद ही मुसकराने लगता।

"अमा नहीं यार। यह तो साँप-बिच्छू दिखा कर नकली दवाएँ वेचने सड़क पर खड़ा भी हो जाये तो सब इसकी पिटारी को सोने से भर दें।" तीसरा बाबू सबके खिलखिला कर हँसने पर हँस पड़ता।

चौथा चेहरा कुछ गम्भीर बना कर कहता, "यार, साला अचानक हमी को रास्ते में मिल जाता है तो एक क्षण के लिए साले का मंत्री होने का घोखा हो जाता है। दिल धक् से बैठने लगता है। यह साला कभी हमारा हार्ट फेल करायेगा?"

'यह मोंदू किसी मंत्री के साथ क्यों नहीं चिपक जाता। सेठ-साहूकार घोखे में इसी की आवभगत शुरू कर देंगे।" पांचवाँ अपनी मूछें उमेठते हुए कहता।

"लेकिन जाय क्यों। हमारी गालियां खाये बगैर इसे चैन कैसे पड़ेगा।" चौथा अपनी बनावटी गम्भीरता त्याग कर बोल पड़ता।

हँसी का दौर चल पड़ता। बाबुओं की फब्तियाँ कुछ देर और चलतीं लेकिन कमला प्रसाद सिर झुकाए अपनी फाइल के पेज उलटता-पुलटता

रहता जैसे इन वातों का उससे कोई सरोकार न हों। कोई उत्तर देने की बात उसके मन में उठती तक न थी। लेकिन जब कोई धृष्ट होकर अपनी कड़वी वात का समर्थन उसी से कराने के लिए उससे पूछता, "क्यों कमला प्रसाद जी, ठीक है कि नहीं।" तो कोई प्रतिवाद करने के बजाय वह खिसियाई हँसी से उसकी ओर देख कर चुप हो रहता।

दूसरे वावू अक्सर अधीक्षक की मिन्नत करके या उसके कान भर कर अपना ज्यादा-से-ज्यादा काम कमला प्रसाद को बँटवाने की कोशिश करते रहते। अधीक्षक जब कभी चिढ़ कर उसको काफी काम देता तो उसे घुड़क जरूर देता था, "कमला प्रसाद जी, यह सब काम आज ही हो जाना है। समझे आप। इसे खत्म किये बगैर आज आप घर नहीं जायेंगे।"

"जी हाँ" कमला प्रसाद खिसियाए स्वर में बिना किसी घवड़ाहट के उत्तर देता। 'ना' कहना या कोई प्रतिवाद करना तो जैसे उसने कभी जाना ही न था।

शाम को कमला प्रसाद के पास काम का गट्ठर वैसा का वैसा पड़ा देख अधीक्षक झुँझला कर पूछता, "कमला प्रसाद जी, सारे दिन आप क्या करते रहे। फाइलों का ढेर तो वैसा ही है। कुछ भी तो नहीं होता आपसे। क्या वताऊँ कैसे कूड़मगज हो।"

"जी हाँ।" कमला प्रसाद सिर झुकाए निर्विकार भाव से उत्तर देता।

अधीक्षक और भी क्रुद्ध कर कहता। "आप जैसे आदमी को मैं कहाँ तक निभाऊँ, मेरी समझ में नहीं आता।"

'जी हाँ'। कमला प्रसाद फिर उसी निर्लिप्त भाव से सिर खुजाते हुए उत्तर देता।

"खाक जी हाँ। बस एक यही 'जी हाँ' कहना सीखा है आपने।"

"जी हाँ।" कह कर कमला प्रसाद अपनी सीट पर फाइलों के बीच सिर छिपा कर इतना दुबक जाता कि ठीक से दिखाई भी न पड़ता।

दफ्तर बन्द होते ही कमला प्रसाद अधीक्षक को घर तक पहुँचाने जाता। धूप या बूंदाबांदी हुई तो छतरी उनके सिर पर तान कर खुद तेज

धूप सहते हुए या भीगते हुए जाता। दूसरे दिन अधीक्षक उसका काफी काम दूसरों को बांट देता।

ऊपर के छोटे अफसरों द्वारा भी कमला प्रसाद को बुलाये जाने के अवसर बहुत कम आते। जब कभी बुला ही लिया जाता तो अधीक्षक खुद जाकर बातें कर आता। लेकिन आज अधीक्षक पर पहले ही डाँट पड़ चुकी थी। अब आग में सिर डालने को जाने के लिए वह कतई तैयार नहीं था। कमला प्रसाद को कई बार अपने पास मंडराते देख उन्होंने उससे साफ-साफ कह दिया, "आपकी बेवकूफी के लिये मैं कहाँ तक आप को बचाता फिरूँ। विमल ने कहा नहीं, आप झट उसके साथ बैठ गये। टाइप कापी में भी कुछ अर्थ का अनर्थ कर दिया होगा।" फिर उन्होंने दोनों से डाँट कर कहा, "जाओ जल्दी। यहाँ बैठे-बैठे क्या कर रहे हो ? देर होगी तो नौकरी से भी हाथ धोओगे।"

कमला प्रसाद अपने सहयोगी विमल के साथ दीन कातर दृष्टि से सबको देखते हुए संयुक्त सचिव के कमरे की ओर बढ़ा। बाकी बाबू उनकी हालत देख अपना भाग्य सराहने लगे।

संयुक्त सचिव के कमरे के दरवाजे पर पहुँचते ही कमला प्रसाद ठिठक गया। वह विमल के दरवाजा खोल कर भीतर जाने की राह देखने लगा। विमल ने आँखें तरेर कर घुड़की दी, "रुक क्यों गये ? घुंडी घुमाओ, भीतर चलो।" अचानक दरवाजा खुला और एक श्वेतधारी सज्जन बाहर निकले। दरवाजा खट से बन्द हो गया।

विमल और जोर से घुड़का, "जल्दी करो, नहीं तो दोनों मारे जायेंगे।"

कमला प्रसाद ने एक बार भयभीत दृष्टि से विमल की ओर देख कर घुंडी घुमा दी और दरवाजे को जरा खोल कर भीतर झाँका।

"आइए, आइए।" संयुक्त सचिव दरबारी मल जी अपनी कुर्सी की ओर जाते-जाते रुक गये।

कमला प्रसाद चकरा गया। यह क्या विचित्र माया हो रही है ? यह

अभिवादन कैसा ? कहीं स्वप्न तो नहीं देख रहा है वह ? यह क्या ? दरबारीमल मुसकराते हुए पास आ रहे हैं। जादू का खेल तो नहीं हो रहा है, यह सब ? ये लो, दरबारीमल जी दोनों हाथों से अगवानी करते हुए क्या कह रहे हैं, "आइए, श्रीमन्, बैठिये।" कमला प्रसाद के रहे-सहे होश-हवास भी गायब हो गये। मन्त्रमुग्ध-सा दरबारीमल जी के पीछे-पीछे जा कर कुर्सी के पास खड़ा हो गया। दरबारीमल जी कुर्सी पर बैठते हुए बड़े ही आग्रहपूर्वक बोले, "आप बैठने का कष्ट करें, श्रीमान्।" कमला प्रसाद की ज्ञानेन्द्रियाँ सुन्न हो गयीं। आज्ञापालन की सदा से पड़ी आदत के अनुसार वह कुर्सी पर सीधा बैठ गया।

विमल ने बाहर से दरबारीमल जी की बातें सुनीं तो बेहद चकराया। इष्टदेव का स्मरण करते हुए अपने को पूरी तौर से भाग्य के अर्पण कर वह भी भीतर घुस गया।

दरबारीमल जी की मुद्रा तन गई। सूखा चेहरा लिये और अधमैली कमीज, बिना क्रीज़ का पैंट तथा घिसा जूता पहने कौन व्यक्ति उनके कमरे में प्रवेश करता है, इसे वे अच्छी तरह जानते थे। सूखे स्वर में बोले, "कहिए, क्या काम है ?"

कमला प्रसाद की ओर टेढ़ी दृष्टि से देखते हुए विमल गिड़गिड़ा कर बोला, "श्रीमान् ने अभी फाइल में किसी गलती के लिए बुलाया था।"

दरबारीमल जी की भृकुटियाँ तन गयीं। एक तो किसी बाबू की गलती को वे यों ही नहीं बख्शते थे। फिर बगल में स्वच्छ खादी पहना व्यक्ति, जो एम० एल० ए० या एम० पी० या कोई और बड़ा नेता हो सकता है, बैठा हो तो अपने अनुशासन का प्रभाव उनके मन पर डालने के लिए वे बाबू को फटकारने में अपनी पूरी ताकत लगा देते थे।

"आप काम करने आये हैं या मौज करने ? आँख से देखकर आप काम नहीं करते ?" फिर दाँत पीस कर बोले, "कामचोरी के लिये जानते हो मैं फ़ौरन मुअत्तल कर देता हूँ।"

विमल के काँपते हुए पैर कमला प्रसाद को भी दिखायी दिये। उसके

कलेजे में भी दहशत भर गयी। उसे लगा जैसे कुर्सी की सीट उसे चुभने लगी है। वह समझ गया। दरबारीमल जी को उसके बारे में गलतफहमी हो गई है। एम० एल० ए० और एम० पी० वगैरह की वे बहुत ही आव-भगत करते हैं, यह उसने भी सुन रखा था। सही बात मालूम होते ही उसका क्या होगा, यह सोचते ही उसका दिल बैठने लगा। उसे तो फौरन बरखास्त ही कर देंगे।

विमल हाथ जोड़ कर दबी जबान में बोला, "श्रीमन्, आज पहली बार गलती हो गयी, माफी चाहता हूं। आयन्दा…"

"हां हां आयन्दा आप कभी गलती नहीं करेंगे। चरका देने की कोशिश न कीजिए आप। क्या नशा करके काम करने बैठे थे? जब काम नहीं करना है तो दफ्तर आते ही क्यों हैं आप?"

दरबारीमल जी को जैसे अचानक याद आया हो इस तरह कमला प्रसाद की ओर मुड़ कर बोले, "श्रीमन्, क्षमा कीजिएगा। बस एक मिनट के लिए मुझे क्षमा करें। क्या बताऊँ, ऐसे ही लोगों से हमें काम लेना होता है। जरा-सी आँख की ओट हुए नहीं कि काम छोड़ गप्प मारना शुरू कर देंगे। पता नहीं इन लोगों की क्या जहनीयत होती है। देश का इनको ध्यान नहीं, राष्ट्र का कोई ख्याल नहीं। काम करना नही चाहते। बस तनख्वाह लेते वक्त इनसे कभी भूल नहीं होती।"

कमला प्रसाद लगभग अचेतनावस्था में प्रवेश कर चुका था। मुंह से अनायास ही 'जी हाँ' की ध्वनि निकलते ही उसे आभास होने लगा कि उसके दिल की धड़कन अब बन्द ही होने वाली है।

"देखो", दरबारीमल जी विमल की ओर देख कर रोबीले स्वर में चेतावनी देते हुए बोले, "इस बार मैं सिर्फ तुम्हारी वेतन-वृद्धि रोकने का आदेश दे रहा हूं। अगली बार मुअत्तल कर दूंगा…हाँ, मैंने दो आदमियों को बुलाया था। दूसरा कहाँ है?"

विमल ने कमला प्रसाद की ओर कनखियों से देखा लेकिन मुंह से आवाज़ न निकल पाई। दरबारीमल जी कड़क कर बोले, "जाओ, दूसरे

को फौरन भेजो।"

विमल सिर झुका कर जैसे ही बाहर निकला, दरबारीमल जी तपाक से कमला प्रसाद की ओर मुड़े, "हाँ, श्रीमन् मेरे लिए क्या खिदमत है?"

कमला प्रसाद कुर्सी से उठ चुका था। सहमे स्वर में बोला, "जी, वह दूसरा आदमी मैं ही हूँ।"

"कौन दूसरा?" दरबारीमल जी ने आश्चर्य व अविश्वास की दृष्टि से उसकी ओर एकटक देखते हुए पूछा।

"जी" कमला प्रसाद लड़खड़ाते स्वर में बोला, "दूसरा जिससे गलती हुई है, मैं ही हूँ।"

"ऐं! वह फाइलवाली गलती!" दरबारीमल जी कुछ क्षणों तक कमला प्रसाद की ओर अवाक् देखते रह गये। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वे हलाहल विष का घूंट बड़े कष्ट से गले से नीचे उतार रहे हैं।

"जी हाँ, मैं क्षमा चाहता हूँ।" कमला प्रसाद ने रोनी-सी आवाज में उत्तर दिया।

दरबारीमल जी की गरदन झुक गई। विकट घृणा और क्रोध से घुटे स्वर में इतना ही कह पाये, "बुजुर्गों की उम्र है आपको। फिर भी ऐसी गलती करते हैं। आप जाइए।"

कमला प्रसाद इस तरह दरवाजे के बाहर निकला जैसे बाघ के मुंह से बच कर मेमना भागा जा रहा हो।

उपदेश

महेश की आखिर परमात्मा ने सुन ही ली। जिस बात की उसने कल्पना भी न की थी, वह आज हो गई। चारों वेदों और छहों शास्त्रों के मर्मज्ञ, जितेन्द्रिय, आनन्दघन, प्रशान्तात्मा, ब्रह्मस्वरूप जगद्गुरु स्वामी कैवल्यानन्दजी ने उसे दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया। महेश को इसमें निस्सन्देह परमात्मा का अदृश्य हाथ दिखाई दिया। जिन स्वामीजी को परमात्मा का साक्षात्कार हो चुका है, जिनके योगबल की सैकड़ों कथाएँ प्रचलित हैं, जिनके दर्शन से ही पापों से छुटकारा मिल जाता है, जिनका मुँह बड़े-बड़े सेठ, अफसर, प्रोफेसर, वकील हरदम जोहते रहते हैं और जिनके एक ही प्रवचन ने बड़े-बड़े नास्तिकों को आस्तिक बनाकर लौटा दिया है, उन्होंने महेश के कुछ कहने के पहले ही उसके मन की व्यथा समझ ली और केवल दीक्षा ही नहीं दी, गृहस्थाश्रम में पालन करने के लिए कुछ मूल-मंत्र भी बताए। यह क्या कोई लौकिक घटना हो सकती है। महेश ने इस पर सोचा, तर्क किया और उसे दृढ़ विश्वास हो गया कि उन मूल-मंत्रों का पालन करके उसे अपने इहलोक और परलोक सुधारने का परमात्मा ने एक अवसर दिया है। वह उन मूल-मंत्रों का अक्षरशः पालन करेगा, ऐसा उसने अपने हृदय में पक्का निश्चय कर लिया।

महेश की सामने घड़ी पर नजर पड़ी, तो उसके होठों पर मुस्कान

विखर गईं। और दिन जब सोने का समय होता था, हृदय में एक अव्यक्त बेचैनी छायी रहती थी। आज पहली बार उसे परम शान्ति का अनुभव हुआ। कोई संशय, कोई दुश्चिन्ता अब शेष नहीं रह गई थी। मन को क्षणिक सांसारिक सुखों के पीछे भटकाना अशांति हो तो मोल लेना है। यह क्षणभंगुर शरीर यहीं एक रोज समाप्त हो जायगा। उसके सुख की इतनी लालसा! महेश को आश्चर्य हुआ कि यह ज्ञान-बोध उसे पहले क्यों नहीं हुआ। तभी तो धर्म-शास्त्र में कहा है कि गुरु के मिलने से ही ज्ञान-चक्षु खुलते हैं और गुरु की प्राप्ति ईश्वर की ही कृपा से होती है। सो आज उसे स्वामी जी मिल ही गये।

आज रात प्रथम बार महेश को एक सुन्दर स्वप्न दिखाई दिया। स्वामीजी ने फिर उसे दर्शन दिये और दाहिना हाथ उठाकर उसे वरदान देते हुए कहा "वत्स, तेरा दान मलिन चेहरा देखते ही मैं तेरा आत्मिक कष्ट समझ गया था। मेरे बताये मूल-मंत्रों का पालन करके ही तेरा यह आत्मिक कष्ट दूर होगा।" वरदान देकर स्वामी जी अंतर्धान हो गये।

प्रातःकाल जब महेश उठा तो स्वप्न का स्मरण आते ही उसने स्वामी जी को मन ही मन प्रणाम किया। अब संदेह करने का कोई प्रश्न नहीं रह गया था। यह परमात्मा की ही इच्छा थी कि वह स्वामी जी के कथन के अनुसार अपना शेष जीवन ढाल ले। तभी उसे सच्ची आत्मिक शान्ति मिलेगी।

दफ्तर में छुट्टी होने से उसने कुछ निश्चिन्त होकर संध्या-पूजा की। तत्पश्चात् जलपान करके वह ज्योंही स्वामी जी के उपदेशों का संग्रह अमृत-घट का पाठ करने बैठा, बाहर दरवाजे की जंजीर जोर से खटखटाने की आवाज हुई। पाठ बन्द कर उसने किवाड़ खोले, तो उपाध्याय जी थे। इनसे उनका विशेष परिचय न था। स्वामी जी के भक्त होने के नाते वह उनको जानता अवश्य था, और रास्ते में भेंट हो जाने पर उनसे कुशल-क्षेम पूछ लिया करता था।

उपाध्याय जी को सामने की कुर्सी पर बैठा कर महेश ने पूछा "आज

कैसे कष्ट किया आपने ? घर में तो कुशल-मंगल है ?"

उपाध्याय जी दोनों हाथ जोड़ कर बोले, "भगवान की कृपा से घर में सब ठीक ही है। वैसे गृहस्थी में कुछ न कुछ झंझट लगा ही रहता है। आज मैं अपने एक स्वार्थ से ही आया हूँ।"

महेश विनयपूर्वक बोला, "बताइये, मेरे योग्य क्या सेवा है।"

"बात यह है," उपाध्यायजी कुछ आगे की ओर सरक कर बोले, "मेरे एक निकट सम्बन्धी तबादला होने पर कल ही मेरे यहाँ आए हैं। मेरे यहाँ जगह का ऐसा ही हाल है। आपके बच्चे सुना गाँव गये हैं।"

"पर वे तो महीने दो महीने में ही वापस आ जायेंगे। तीन ही कमरे कुल मेरे पास हैं।" महेश ने बीच ही में बात काट कर कहा।

"नहीं, नहीं, यह बात नहीं है," उपाध्याय जी समझाते हुए बोले, "मैं महीने दो महीने तक ही तो उन्हें आपके यहाँ रखना चाहता हूँ। आशा है तब तक कहीं न कहीं जगह अवश्य मिल जायगी। वे बड़े प्रभावशाली व्यक्ति हैं। अगर कोई मकान न भी मिल पाया, तो फिर जैसे भी होगा वे मेरे ही यहाँ रहेंगे। आपको सिर्फ बच्चों के आने तक तकलीफ़ देना चाहता हूँ।"

महेश को स्वामी जी का मूल मंत्र याद हो आया, "परोपकार में रत रहो। कोई किसी चीज की याचना करे, तो ना न कहो।"

तत्काल ही उसने उत्तर दिया, "इतनी-सी बात के लिए आप कह रहे हैं। भला मैं ना कैसे कह सकता हूँ। पर मेरे बच्चों के आने के पहले ही उन्हें चला जाना होगा।"

"इससे आप निश्चिन्त रहें तब तक मकान मिल ही जायगा, नहीं तो मेरा घर है ही। आखिर वे कोई पराये तो हैं नहीं।"

उपाध्याय चले गये। महेश पुनः अमृत-घटका रसपान करने में लीन हो गया।

मुश्किल से आधा घण्टा बीता होगा, उपाध्याय एक ठेले में लदे सामान के साथ आ पहुँचे।

विल्कुल नया सोफा सेट देख महेश ने सोचा, कोई संभ्रांत व्यक्ति मालूम पड़ते हैं। महीने दो महीने सत्संग ही रहेगा। पर एक ही छोटा-सा ट्रंक और एक मैली दरी में लपेटा हुआ विस्तर देख उसे आश्चर्य हुआ। कुछ ही देर में उपाध्याय जी के निकट सम्बन्धी भी आ पहुँचे। उपाध्याय जी ने परिचय कराया, "ये नैनसुख जोशी हैं और ये इनकी पत्नी। इनका यह अन्तर्जातीय विवाह है।"

नै-सुख ने हँसकर हाथ मिलाया। उनकी पत्नी ने मुस्कराकर हाथ जोड़े। नैनसुख का कद लम्बा, गाल पिचके, नाक मोटी-चिपटी, रंग काला, आँखें धँसी हुई पर सुर्ख, सिर आधा गंजा और सीना कुछ भीतर को धँसा हुआ था। उम्र करीब पचास के लगती थी। स्त्री ठीक इसके विपरीत ठिगनी, रंग गोरा, नाक लम्बी, होंठ मोटे, जिन पर लिपिस्टिक पुता हुआ था, और आँखें वड़ी पर सूखी हुई-सी थीं। महेश को नैनसुख और उसकी पत्नी दोनों के आँखों का भाव अच्छा नहीं लगा और उसका मन अलग हट जाने को हुआ। पर तभी उसे स्वामी जी का दूसरा मूलमंत्र याद आ गया "सभी प्रकार के मनुष्यों में भगवान का रूप देखो और सवसे प्रेम करो।"

वार-बार स्वामी जी के उपदेश, चाहे कुछ क्षणों के लिए ही क्यों न हों, विस्मृत हो जाने से कुछ-कुछ आत्म-ग्लानि अनुभव करते हुए उसने नैनसुख से हाथ जोड़कर नमस्कार किया और नीचे के कमरे खाली कर अपना सामान ऊपर एक ही कमरे में रखवा दिया।

नैनसुख ने कलाई को ऊपर करके घड़ी देखते हुए महेश से कहा, "अच्छा साहव, अव हम लोग खा-पी आते हैं। शाम को बातचीत होगी।"

महेश बीच का दरवाजा खोलकर बगल के मकान में गया, तो उसके ताऊ का लड़का प्रकाश बोला, "कोई आए थे क्या? वोलने की आवाज आ रही थी।"

"उपाध्याय जी महीने-डेढ़ महीने के लिए मेरे यहाँ जगह माँगने आये थे।"

"उनका तो अपना मकान है।"

"नहीं, अपने लिए नहीं, उनके एक रिश्तेदार हैं, उन्हीं के लिए माँग रहे थे।"

"तो तुमने जगह दे दी क्या ?"

"हाँ, इतनी जरा-सी बात के लिए उन्होंने कहा, ना कैसे कहता।"

प्रकाश को महेश के इस कार्य पर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। पहले तो वह पूछ लेता था। आज बिना कुछ कहे उसने ऐसा कर दिया। गम्भीरता से बोला, "महेश, तुमने गलती की है। आजकल मकानों का क्या हाल है, तुम जानते ही हो। किसी को जरूरत को पूरा करना बुरा नहीं, पर यह कलियुग है। होम करते हाथ जलता है।"

महेश का हृदय एक क्षण के लिए काँपा। उसके पास छोटा ही सही, एक मकान तो है। लोगों को कैसी-कैसी जगहों में रहना पड़ रहा है, इसे वह अच्छी तरह जानता था। उसका चचेरा भाई साल-डेढ़ साल से बच्चों के साथ एक मोटर गैराज में रहता है। दफ्तर के कई मित्रों से मिलने जब वह जाता है, तो उसे उनकी गली में घुसते ही बदबू से बचने के लिए नाक पर रूमाल लगाने पर भी चलना मुश्किल हो जाता है। तभी स्वामी जी का ध्यान आते ही वह दृढ़ स्वर में बोला, "प्रकाश, किसी को बुरा सोचना पाप है। थोड़े ही दिनों के लिए तो मैंने उन्हें जगह दी है। इतनी-सी बात के लिए स्वामी जी के एक भक्त पर इतना अविश्वास नहीं करना चाहिए। आखिर एक रोज यह सब छोड़कर तो हमें जाना ही पड़ेगा।"

प्रकाश चुप रहा। महेश खा-पीकर अपने कमरे में लौट गया और अमृत-घट के धर्म-पथ अध्याय का मनन करते हुए सो गया।

शाम को जब वह स्वामी जी का अन्तिम प्रवचन सुनकर लौटा, तो उसे यह सोचकर बड़ी प्रसन्नता हो रही थी कि नैनसुख को स्थान देकर उसने अच्छा ही किया। स्वामी जी ने स्थूल और सूक्ष्म की कितनी अच्छी व्याख्या की थी। ये प्रकाश वगैरह तो हर चीज को स्थूल दृष्टि से देखते

हैं। इसीलिए सबकी बुराइयों पर ही जोर देते हैं। सूक्ष्म दृष्टि से देखते तो नैनमुख और मुझमें कोई अन्तर मालूम न पड़ता। सबकी आत्माएँ तो एक ही हैं। यह भेदभाव बाहरी चोलों को लेकर ही तो है।

सोते समय चारपाई पर लेटकर वह धर्मपथ अध्याय के शेष अंश का दत्त-चित्त होकर पाठ करने लगा। खटके की आवाज सुन सामने देखा, तो नैनसुख का नौकर एक तश्तरी में चांदी के वर्क लपेटे हुए पान लेकर खड़ा था। उसने मुस्कराकर पान के बीड़े उठा लिए और पुनः अपने पाठ में मग्न हो गया।

सुबह वह दफ्तर जाने लगा तो नैनसुख की पत्नी पान की तश्तरी लेकर सामने आई। महेश ने भी मुस्कराकर एक बीड़ा मुँह में डाल लिया और धन्यवाद देकर दफ्तर को रवाना हो गया। मन में स्वामी जी का ध्यान कर एक बार उन्हें प्रणाम किया। स्थूल दृष्टि सचमुच कितनी भ्रामक होती है। पहली बार नैनसुख को देखते ही मेरे मन में अनायास ही वितृष्णा उत्पन्न हुई थी। पर उनकी पत्नी तो बड़ी अच्छी मालूम पड़ती हैं।

उसी रोज महेश को अपने अफसर के साथ लम्बे दौरे पर चला जाना पड़ा।

करीब महीने भर बाद लौटकर आया, तो प्रकाश ने दो-तीन पत्र उसे दिए और चाय का गिलास उसके हाथ में पकड़ाते हुए गम्भीरता से कहा, "महेश अपने इन मेहमानों को जल्दी हटा दो तो अच्छा होगा।"

"क्यों ? क्या कोई खास बात हुई।" महेश ने आश्चर्य से पूछा।

"अब मैं क्या कहूँ, मुहल्ले वाले भी सशंकित होने लगे हैं।" प्रकाश कुछ खिन्न स्वर में बोला। "तुम इन्हें अब अलग कर दो, तो सब बातें यहीं दब जायँगी।"

"आखिर कुछ बताओ भी तो ?" महेश कुछ जोर देकर बोला।

"अब तुम आ गए हो, खुद ही देखोगे। यह औरत ऐसी ही मालूम

पड़ती है। इसके यहां आने-जाने वालों का तांता लगा रहता है। ज्यादा-तर मर्द होते हैं, जो इधर-उधर ताक-झांक बहुत करते हैं। कुछ तड़क-भड़क वाली औरतें भी होती हैं। इनके रँग-ढँग अच्छे नहीं हैं। मुहल्ले वाले तुमसे कहने ही वाले हैं।...और एक रात को तो मैंने उपाध्याय के साथ प्रेमदास और सेवानाथ को भी इनके यहाँ देखा।"

"किन्हें देखा!" महेश को ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उसने बिजली का तार छू लिया हो। "प्रेमनाथ और सेवादास...उनकी तो बड़ी-बड़ी दुकाने हैं। वे इस छोटे से मकान में...तुमने ठीक देखा क्या?"

"तुम भी कितने सीधे हो महेश। इसमें इतने आश्चर्य की क्या बात है। यह दुनियाँ ऐसी ही चलती है। दिन में एक रूप, तो रात में दूसरा। तुम सबको अपने ही समान समझते हो।"

"तुमने ठीक तो देखा?"

"हाँ, मैंने आँखें मलमल कर देखा। पहले मुझे भी यकीन नहीं आया। वे रुपये वाले लोग हैं। हमें कैसे जानें, पर हम तो उन्हें जानते ही हैं। यह नैनसुख गायब था। वे जरूर इस औरत के पास ही आये थे। तुम मान लो यह सब मिलीभगत है। यह औरत और मर्द पेशे-वर हैं।"

"यकीन नहीं आता प्रकाश, इतने प्रतिष्ठित लोग, स्वामी जी के इतने बड़े भक्त, और ऐसे कर्म...हो सकता है वे उपाध्याय जी के साथ किसी अच्छे उद्देश्य से आये हों।...पाप हमारे ही मन में हो..."

"लेकिन वह उपाध्याय भी थोड़ी ही देर में चला गया था। देखो महेश जो कुछ दुनिया मैंने देखी है, उससे मैं तुमसे यही कहूँगा कि किसी तरह इन्हें खिसकाओ, उसी में कुशल है।"

"साथ रहने का कोई सवाल ही नहीं है। मैंने बच्चों के आने तक ही इन्हें जगह दी है। अच्छा, अब मैं इस बारे में कुछ सोचूंगा।"

प्रकाश चला गया। उसकी बातों से वेचैनी अनुभव करता हुआ महेश कमरे में टहलने लगा। पत्रों की याद आते ही मेज से उन्हें उठाकर वह पढ़ने लगा। एक पत्र उसी की पत्नी का था। लिखा था कि वहाँ भी उसकी तवियत नहीं सुधरी। वह आठ-दस दिन में आ रही है। साथ मिल गया है।

महेश पत्र पढ़ चुका तो उसने सोचा अच्छा ही हुआ। नैनसुख से कह देता हूँ मेरे बच्चे आ रहे हैं। मुझे मकान की जरूरत है। यही वादा भी था।

महेश उठकर नीचे नैनसुख के कमरे के दरवाजे पर पहुँचा ही था कि वहाँ का दृश्य देख चुपचाप वाहर वहीं खड़ा हो गया। एक लालाजी तैश में आकर कह रहे थे "बम्बई से चेक आने में महीनों लग गये। कहीं होता तो आता। जब गाँठ में फूटी कौड़ी नहीं, तो सोफा-सेट पर बैठने का शौक क्या चर्राया। सीधे-सीधे बताओ रुपया देते हो कि नहीं ?"

नैनसुख विगड़ कर बोला, "जरा जबान संभाल कर बोला करो। कह तो दिया, चेक आते ही ले लेना। कहीं कोई हिसाब की गड़बड़ी हो गई होगी। अब आता ही होगा।"

"तुम्हारा रुपया आ चुका, अब तुम इस सोफा सेट का इतने महीनों का किराया दे दो। मैं इसे उठाये लिये जाता हूँ।"

"तुमने वदतमीजी न की होती, तो मैं जिससे भी कह देता, वह तुम्हारा रुपया दे देता। लेकिन अब तुम यह सोफा-सेट ले जा सकते हो।"

लाला दाँत पीसते हुए अपने साथ के लठैत नौकर से बोला, "बाहर निकालो यह सोफा-सेट। यह क्या रुपया देगा। खुद तो औरत की कमाई खाता है।"

लाला बाहर गया तो एक अधेड़ उम्र का आदमी भीतर आया और एक छोटी-सी मेज पर रखी हुई घड़ी पर नजर पड़ते ही उसे हाथ में लेकर बोला, "यह घड़ी मैं लिये जाता हूँ। आपका चेक न मालूम कब

आए। इसका आप इतने महीनों का किराया दे दीजिए। बाकी मैं छोड़ दूँगा।"

नैनसुख चटखा, "किराया दूँ या इस बदतमीजी के लिए घड़ी की चोरी का इलजाम लगाकर जेल भिजवाऊँ।"

वह आदमी भी क्रोध में भरकर बोला, "यह अच्छी रही। उल्टा चोर कोतवाल को डांटे। मेरी घड़ी और मुझी पर चोरी का इलजाम।"

"अच्छा यह बकवास बन्द करो।" नैनसुख की आँखों में मानो खून चढ़ आया हो। फिर कोने में कुर्सी पर बैठी हुई पत्नी से बोला, "वो डंडा ले आओ। इसको जरा घड़ी का किराया दे दूँ।"

वह आदमी हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ और जाते-जाते बोला, "पता नहीं किस घड़ी में तुझ प्रेत के दर्शन हुए। भाग्य में यह नुकसान बदा होगा, तभी तू मिला। घड़ी नहीं बेच खाई यही गनीमत है।"

वह आदमी चला गया। महेश का हृदय आतंक से भर गया।

वह अपने कमरे में लौट आया। वास्तविक स्थिति समझने में अब कोई कठिनाई नहीं थी। कहीं इन्होंने मकान न छोड़ा तो क्या होगा। मैं कहाँ जाऊँगा। ये तो कोई भी नीच कर्म करने से नहीं चूकेंगे। इस औरत की पहुँच भी न मालूम कहाँ-कहाँ है।"

आतंकित मन से उसने उपाध्याय से ही पहले कहने का निश्चय किया और तुरन्त ही उनसे मिलने चल पड़ा। उनके यहाँ पहुँचा तो दरवाजा खुला हुआ था। भीतर तख्त पर उपाध्याय हुक्का पी रहे थे। महेश जाकर उसी के एक ओर बैठ गया। अपने बच्चों के आने की बात कहकर जब उसने नैनसुख को वापस बुलाने का जिक्र किया तो उपाध्याय बोले "अच्छा, मैं आज उनसे बात करूँगा।"

महेश को ये शब्द खटके। कुछ उत्तेजित होकर बोला, "मेरे बच्चों के आने पर नैनसुख जी को वापस बुलाने का आपने वादा किया था। अब उनसे अपने यहाँ आने को कह दीजिए।"

उपाध्याय कुछ क्षण चुप रह कर बोले, "मैं कल सुबह जैसा भी होगा,

आपको बता जाऊँगा। इस वक्त क्षमा चाहता हूँ। मुझे एक जरूरी काम से बाहर जाना है।"

महेश वापस आ गया। मन आशंकित हो उठा। क्या इस उपाध्याय के मन में भी चोर है। कहीं यह भी तो धोखा देना नहीं चाहता। मेरे विरुद्ध कोई षड्यन्त्र तो नहीं रचा गया है।

नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मन के दूसरे कोने से आवाज आई। उपाध्याय ने कहा ही क्या है। यही न कि कल आकर मुझे बता जायेंगे। अपने ही विचारों के कारण इतना भयभीत हो उठने पर महेश को आश्चर्य हुआ। पर उन्होंने बता जाने की बात क्यों कही। इसमें बताना क्या है। उनका वादा तो अपने घर वापस ले जाने का है। उसके मन में दुश्चिन्ता बनी रही।

दूसरे दिन सुबह महेश जल्दी-जल्दी दाढ़ी बना कर बड़ी अधीरता से उपाध्याय की प्रतीक्षा करने लगा। जब देर होने लगी तो उसने नहा लेने का विचार किया। नीचे नल पर पहुँचा ही था कि नैनसुख की आवाज उसके कान में पड़ी। वह जोर से अपनी पत्नी से कह रहा था, "अजी यह उपाध्याय कुछ कहने वाला कौन है? मैं हाई कोर्ट तक मामला पहुँचा दूँगा। मजाक हो रही है मकान से हटाना। कल ही मिनिस्टर से कह दूँगा, तो नौकरी से भी हाथ धोना पड़ेगा। ज्यादा चूँ-चपड़ किसी ने की तो ऊपर के हिस्से में भी कब्जा कर लूँगा। शहर के सारे गुण्डे मेरे कब्जे में हैं।"

पत्नी समझाती हुई बोली, "अरे नहीं, ऊपर का हिस्सा रहने दीजिए। आजकल के जमाने में कोई कहाँ जायेगा? इतनी दया तो दिखानी ही चाहिए। हाँ, नीचे के हिस्से में किसी को पैर मत रखने दीजिए।"

महेश के हाथ-पैर कांपने लगे। स्पष्ट था कि ये बातें उसी को सुना कर कही जा रही थीं। एक क्षण क्रोध की प्रचण्ड- ज्वाला-सी उसके हृदय में उठी। इच्छा हुई, इन दोनों ो इनके सामान सहित बाहर पटक दे।

पर इस विचार के साथ ही लोगों की भीड़ का जमा हो जाना, सबका उसकी ओर हिकारत भरी नजर से देखकर कानाफूसी करना और शोरगुल बढ़ने पर पुलिस का आ जाना···ये दृश्य उसकी आंखों के सामने नाच गये। उसके पैरों की शक्ति न मालूम कहाँ लुप्त हो गई।

किसी तरह दो चार लोटे पानी शरीर पर डाल कर उसने बदन पोंछा, कपड़े पहने और ऊपर अपनी चारपाई पर आकर बैठ गया। पैर अब भी कांप रहे थे। वह क्या करे, किससे पूछे? सब उसको ही मूर्ख बनायेंगे।

पैरों की आहट सुन महेश ने सिर उठाया तो प्रकाश और एक अजनबी आदमी खड़े थे। अजनबी की ओर इशारा कर प्रकाश ने कहा, "देखो महेश, ये तुमसे कुछ बातें करना चाहते हैं। मैं अभी आता हूँ।"

प्रकाश चला गया। आगन्तुक सामने कुर्सी पर बैठता हुआ महेश से बोला, "देखिये, मैं हूँ तो खुफिया विभाग का, पर इस समय आपसे आपसी बातें कर रहा हूँ। मैं आपके बारे में पूछताछ करने आया था। यहाँ प्रकाश से मुलाकात हो गई। हम दोनों स्कूल-कालेज के साथी हैं। उससे मालूम हुआ, वे उसके खास रिश्तेदार और सीधे आदमी हैं·····।"

"आप मेरे बारे में पूछताछ करने आये थे। क्या पूछताछ करनी थी?" महेश ने बीच ही में आश्चर्य से विस्फारित नेत्रों से देखते हुए पूछा।

"पूछताछ क्या थी," आगन्तुक ने समझाते हुए कहा, "आपके यहाँ जो मेहमान टिके हुए हैं, इन्हें आप फौरन हटा दें तो यह आपके हक में होगा।"

"क्यों, क्यों क्या बात है।" महेश ने सकपका कर पूछा।

"कुछ बात है, इसीलिये कह रहा हूँ। आप इतना ही समझ लीजिए कि इन लोगों का एक बड़े गन्दे मामले में हाथ होने का शुबहा है। आपके यहाँ ये बने रहेंगे तो आपके भी उलझने में क्या देर लगेगी। उसका नतीजा आप खुद ही······।"

"लेकिन, ये तो उपाध्याय जी के रिश्तेदार हैं और उन्हीं के कहने

पर मैंने इनको जगह दी थी।" महेश ने डरे स्वर में कहा।

"हाँ, उस उपाध्याय ने अपनी बला आपके सिर मढ़ दी। अब आपकी भलाई इसी में है कि आप यह बला जैसे भी हो अपने यहाँ से हटा दीजिए।"

आगन्तुक चला गया। महेश उद्भ्रांत दृष्टि से कुछ क्षणों तक उसको जाते देखता रहा। वह यह क्या कह गया कि आपके उलझने में भी क्या देर लगेगी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह दूर गहराई में गिरता ही चला जा रहा है। दया की याचना-सी करती हुई पत्नी की आँखें और कातर दृष्टि से देखते हुए बच्चे उसकी आँखों के सामने फिर गये। अगर वह उलझ गया तो उनका क्या होगा? उसे अपना गला घुटता हुआ-सा लगा। वह बैठा न रह सका। उठकर दरवाजे तक चला गया और फिर बाहर जाकर उसी विक्षिप्त अवस्था में उपाध्याय के घर की ओर चल दिया।

दरवाजे पर जोर-जोर की आवाज सुन उपाध्याय और उनके घर के लोग चौकन्ने हुए। अगल-बगल के मकान वालों ने भी एक बार बाहर झांककर देखा। दरवाजा खोलते ही उपाध्याय एक-दो कदम पीछे हट गये। महेश सामने खड़ा था। उसकी आंखें लाल हो रही थीं, और बाल अस्त-व्यस्त थे। चेहरे पर हिंसक जन्तु का-सा भाव था, मानो शिकार पर झपटना ही चाहता हो।

उपाध्याय लड़खड़ाती जबान से बोले, "आइये, आइये, महेश चन्द्र जी, बैठिए।"

महेश के दोनों हाथ अपने गले की तरफ आते देख उपाध्याय एक-दो कदम पीछे की ओर सरकते हुए बोले, "कुछ कहिये भी तो, क्या बात है। मुझसे जो भी कहिए, मैं करने को तैयार हूँ।"

महेश दांत पीसते हुए बोला, "उस प्रेत को मेरे घर से अभी हटाते हो या नहीं।"

महेश के दोनों हाथ अपने गले के इतने नजदीक देख उपाध्याय को

लगा जैसे उसको सांस घुटने लगी हो। भयभीत स्वर में बोले, "हाँ, हाँ, इसमें क्या बात है। आपके बच्चे आ रहे हैं। आपको ज़रूर तकलीफ होगी। उन्हें मैं आज ही हटा दूँगा। कहिये तो आप ही के साथ चला चलूँ। लेकिन जरा आप शान्त हो जाइये। ये हाथ नीचे कर लीजिये।"

महेश ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। उसी स्वर में बोला, "हाँ, चलिए मेरे साथ।"

घर पहुँचते ही महेश सीढ़ी पर खड़ा हो गया। नीचे कमरे से नैन सुख की आवाज उसके कान में पड़ी, "अजी मैं देख लूंगा।" पर तभी उपाध्याय ने धीमे स्वर में कुछ कहा और उन लोगों में फुसफुसाकर बातें होने लगीं।

महेश अपने कमरे में आकर चारपाई पर बैठ गया। थोड़ी देर बाद ही उपाध्याय भी आ पहुँचे। आते ही बोले, "आज तो आपको भी छुट्टी है। दूकान बन्द होने से मुझे भी फुर्सत है। मै दो-तीन बजे तक कुछ-न-कुछ इन्तजाम करके आऊँगा। आप तो यही मिलेंगे।"

"हाँ, मैं तो यहीं हूँ। लेकिन आप आयेंगे तो जरूर ही।" महेश ने तीव्र दृष्टि से उपाध्याय की ओर देखकर कहा। उसकी दृष्टि से सकपका कर उपाध्याय बोल उठे, "हाँ, हाँ, मैं आऊँगा। न आनेका क्या सवाल है।"

प्रकाश के बार-बार जिद्द करने पर भी महेश न खा सका, न पी सका।

तीसरे पहर उपाध्याय आ पहुँचे। कुर्सी पर बैठते हुये धीमे स्वर में बोले "इन्तजाम तो हो ही गया है। अवस्थी जी ज्यादातर दौरे पर रहते हैं। वे अपनी गैरहाजिरी में बच्चों के सहारे के लिए किसी सद्गृहस्थ को एक-दो कमरे देने को तैयार हैं। मैंने नैनसुख जी के लिए जिक्र किया। पर वे एक बार आपसे बातचीत करना चाहते हैं। सो आप चल भर दें। बाकी मैं सब ठीक कर लूंगा। नहीं तो, फिर मुझसे कुछ न कहियेगा।"

महेश एक क्षण के लिए हिचका। झूठ बोलकर इस भयानक आदमी को अवस्थी जी के गले मढ़ना क्या उनके और उनके बच्चों के प्रति

विश्वासघात न होगा ? पर इस समय उसे न हटाने से उसका क्या होगा, इसकी कल्पना से ही आंतकित होकर वह बोल उठा, "चलिए।"

उपाध्याय ने देर नहीं की। नैनसुख, उसकी पत्नी और उसका सामान अवस्थी जी के यहाँ पहुँचा दिया गया।

महेश दरवाजे को बन्द कर वहीं जमीन पर बैठ गया। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो उसको कमरा नहीं बल्कि बिछुड़ा हुआ कोई प्रिय संगी पुनः वापस मिल गया है। एक अजीब तृप्ति और संतोष हृदय में भर गया।

थकान का अनुभव होने पर वह ऊपर जाकर अपनी चारपाई पर चित्त लेट गया। दो-तीन रोज की उत्तेजना, चिन्ता और परेशानी का कारण अब दूर हो जाने से उसे सारे शरीर में शिथिलता अनुभव होने लगी। हाथ-पैर ढीले पड़ गये। मुँह से अनायास एक ठण्डी सांस निकल गई और मन में विचारों का बवंडर उठ खड़ा हुआ। "हे ईश्वर, ऐसा क्यों हुआ ? मैंने इस संसार को मिथ्या जानकर निष्काम भाव से परोपकार, सत्य, अहिंसा का व्रत लिया था, पर एक छोटे-से मकान के पीछे मैं सब कुछ भूलकर उपाध्याय का गला घोटने को भी तैयार हो गया था। नैनसुख और उपाध्याय ने मुझे धोखा दिया और मैंने अवस्थी जी को.... ओफ। यदि मकानों का अभाव न होता...।"

महेश को एकाएक ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उसे तत्व-ज्ञान का बोध हो गया हो। अभाव के कारण ही तो वे सब पशु बन गये थे और जब तक यह अभाव बना रहेगा तब तक स्वामी जी के ऊँचे-ऊंचे उपदेश कोरे उपदेश ही रहेंगे।

अवतार

पंडित श्यामनाथ मेरे पड़ोसी हैं। बड़े दयालु और मिलनसार हैं। अक्सर पूजापाठ, जपतप और साधुसंतों की सेवा में व्यस्त रहते हैं। मुझ पर उनका बहुत स्नेह है। लेकिन धर्मकर्म के बारे में मेरी दलीलें उन्हें पसंद नहीं हैं। उनका विचार है कि वैसे मैं सब तरह से अच्छा आदमी हूँ लेकिन धर्म के प्रति उदासीनता मेरे रास्ते में बाधक बनी हुई है। इसलिए मेरी भलाई के लिए वह हमेशा इस कोशिश में रहते हैं कि किसी तरह मेरी प्रवृत्ति धर्मकर्म की ओर मुड़ जाए। किसी साधु-महात्मा के आते ही पंडित श्यामनाथ मुझे बताने तुरन्त चले आते हैं। यही नहीं, जिद करने लगते हैं कि मैं उनके साथ हो चला चलूं। उनका यह अपनापन देख कर इनकार करते भी नहीं बनता।

आज जब वह आए तो बड़े प्रसन्न थे। आते ही इस तेजी से बोले कि बांध तोड़ कर जोर से बहते हुए पानी का भ्रम होने लगा। मैंने उस बहाव में बाधा न पहुँचाने में ही खैरियत समझी।

वह कह रहे थे, "मास्टर साहब, यह मौका न खोइए, शिव और पार्वती दोनों स्वयं आए हैं। इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं। उनका अलौकिक रूप सब कुछ प्रकट किए दे रहा है। मैं अभी वहीं से आ रहा हूं। सैंकड़ों की भीड़ है। बड़े-बड़े लोगों का तांता लगा है। आप, मास्टर साहब, सदा विज्ञान की दुहाई देते रहते हैं। लेकिन विज्ञान अकेले आपने

ही नहीं पढ़ा है। आपके साले क्या विज्ञान नहीं जानते ? इतने बड़े इंजी-नियर होकर भी भक्त हैं। आपके मित्र डाक्टर नर्मदा भी तो भक्त हैं। यह शरीर किस चीज का बना है, कैसे बना है, इसे क्या वह हमसे ज्यादा नहीं जानते ? इसमें आत्मा न होती तो वे क्या भक्त बनते ? इतने नामी वकील, प्रोफेसर, सेठ और अफसर वहां मौजूद हैं, क्या वे सब मूर्ख हैं ? आप आज मेरे साथ चलिए तो सही। यदि आप पर कोई प्रभाव न पड़े तो चले आइएगा। चलने में क्या हर्ज है ?''

पहले ऐसी बातें हुई होतीं तो मुझे हँसी आ जाती। 'शिव और पार्वती के अवतार ? क्यों आए हैं, किस लिए आये हैं', मैं पूछता, लेकिन आज कुछ भी कहने पूछने को मन नहीं हो रहा था। काफी अरसे से मैं यह अनुभव कर रहा था कि मेरे तर्कों से प्रभावित होने के बजाय वह मुझ पर तरस खाने लगे हैं। उनके चेहरे पर मेरे प्रति अवहेलना का भाव रहता है। थोड़ा-सा मुँह विचका कर वह जाहिर कर देते थे कि मेरी बातों का उनकी निगाहों में कोई मूल्य नही है।

मैं सोचता, क्या सचमुच मेरी बातें इतनी तर्कहीन और बेकार हैं ? क्या जो कुछ मैं सोचता हूँ, वह आज के जीवन के विरुद्ध है। एक दिन पत्नी के मुँह से झुँझलाहट में निकल ही पड़ा, "तुम्हारी बातों को सुनता ही कौन है ? लोग उन्हीं को सुनते हैं जो कुछ करके ऊपर पहुँच जाते हैं। जिन्हें कुछ करना धरना नही होता, वे तुम्हारो जैसी लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं।''

मुझे यह सुन कर धक्का-सा लगा लेकिन बाद में ठंडे दिमाग से सोचने पर ये बातें सच मालूम पड़ीं। मेरे दूसरे साथी तरक्की करके कहां से कहां पहुँच चुके थे। मैं वहीं का वहीं पड़ा था। लेकिन खुशामद मुझसे नहीं होती। प्रधानाचार्य ऊपर वालों की जितनी चापलूसी करते हैं, उससे दो गुनी चापलूसी नीचे वालों से चाहते हैं। जिन्होंने ऐसा किया वे ऊपर चढ़ गए। मैं वहीं का वहीं रह गया। दो एक बार जब सहा नहीं गया तो प्राधानाचार्य से भिड़ जाने के कारण नौकरी पर ही आ बनी थी।

गनीमत इतनी हुई कि बात आगे बढ़ने नहीं पाई। ऐसे में तरक्की पाने का सवाल ही कहाँ था।

मैं यहां सोच कर संतोष करता कि जमाना ही भ्रष्ट है लेकिन बाहर वालों के सामने तो यही सत्य था कि मैं अयोग्य समझा गया हूँ। मैं अपनी पत्नी तक की निगाह में दोषी था। सब मुझे अयोग्य समझते। एक निरीह और भोला-भाला आदमी जो न अपने काम का होता है, न दूसरों के काम का। ईमानदारी और सच्चाई पर डटे रहने और खुशामद से दूर रहने का मुझे यह फल मिल रहा था कि दूसरों की निगाहों में मेरा कोई अस्तित्व नहीं रह गया था।

पत्नी को भी कैसे दोष देता। उसे बच्चे पालने हैं। बच्चों के लिए खाने-पहनने की कमी पड़ती तो पत्नी मुझ पर कुढ़ती। अपने या पत्नी के लिए कुछ न मिले तो मन को समझा लेते लेकिन बच्चों को क्या समझाएँ। उनकी परेशानी से मुझे भी घुटन होने लगी थी।

अपने मित्र डाक्टर नर्मदा की सलाह धीरे-धीरे मुझे ठीक लगती जा रही थी। एक रोज उन्हें अपनी जन्म कुण्डली एक ज्योतिषी को दिखाते देख कर मैंने हँसकर आश्चर्य प्रकट किया तो उन्होंने मुझे सचेत करने के भाव से कहा था, "जीवन बाबू, मैं खाने भर को काफी कमा लेता हूँ पर आप परेशान रहते हैं। क्या मैं आप से अधिक योग्य हूँ? नहीं, आपकी विद्वत्ता को कम कैसे कहा जा सकता है। आप अपनी जिद छोड़िए। जहाँ विद्वता से काम चले, उससे काम लीजिए। जहाँ खुशामदतिकड़म की जरूरत हो वहाँ उसे भी कीजिए।

"परमात्मा है या नही, इस पचड़े में न पड़िए लेकिन पूजापाठ, जपतप-साधु-सन्यासियों का सत्संग करते रहिए। उससे अगर कोई लाभ होता है, तो वह होगा ही। हाँ, उसमें इतना लिप्त न हो जाइए कि घाटा अपनी ओर रहे। कान खोल के सुन लीजिए, जीवन बाबू।"

पंडित श्यामनाथ मुझे चुप देख कर आश्चर्य से मेरा चेहरा देख रहे थे। वह मेरे चेहरे के बदलते भावों को पढ़ने की कोशिश कर रहे थे। मैंने

सोचा, उनके साथ जाने में हर्ज ही क्या है। योगियों में कुछ शक्ति होती जरूर हैं। योगिक क्रियाओं में कुछ ऐसी चीजें हो सकती हैं जिन्हें विज्ञान अभी तक न जानता हो। क्या मालूम जिस अवतार की श्यामनाथ जी प्रशंसा कर रहे हैं, उनमें कोई विशेषता ही हो। आखिर कोई बात तो होगी ही जिसके कारण इतने लोग वहाँ खिंचे चले जा रहे हैं। मैंने श्यामनाथ जी के साथ जाना स्वीकार कर लिया।

दो और पड़ोसियों के साथ पंडित श्यामनाथ और मैं एक आलीशान कोठी में पहुँचे। शहर के सबसे बड़े सेठ संपोरियाजी का बड़े-बड़े अक्षरों का आकर्षक साइनबोर्ड दूर से ही दिखाई दे रहा था। बाहर कारों की कतारें थीं। लोगों की भीड़ लगी थी। तीन-तीन चार-चार की संख्या में भक्त दर्शन करके बाहर आ रहे थे। अपने पड़ोसियों के साथ मैं भी एक बड़े और बहुत सलीके से सजे कमरे में पहुँचा। महात्मा जी गेरुआ रेशमी वस्त्र पहने एक तख्त पर बिछी बाघ की खाल पर बैठे थे। पंडित श्यामनाथ और दोनों पड़ोसी उन्हें प्रणाम करने के लिए जमीन पर औंधे लेट गए।

उनकी देखा-देखी मैं भी झुकने जा रहा था कि चकित होकर देखता रह गया। महात्माजी ने मेरी ओर देखा। एक क्षण के लिए आश्चर्य का भाव उनके चेहरे पर उभरा। उन्होंने तुरन्त एक आँख बन्द करके खुली आँख से मेरी ओर इस तरह देखा मानो कह रहे हों, 'जीवन, तुम्हें इतना चकित न होना चाहिए। क्या तुम मुझे नहीं जानते? फौरन सँभल जाओ नहीं तो···''

मैं इतना चकरा गया था कि यह सुधि ही न रही कि मैं कहाँ हूँ? क्या कर रहा हूँ? जिन्हें अवतार समझ कर पूजा जा रहा था, वह तो···

बीते समय की परतें हटा कर, मन की गहराई में दबी स्मृतियों ने करवटें लेना शुरू कर दिया। बीस वर्ष पहले का जीवन आँखों के सामने साकार हो उठा जैसे कल ही सब कुछ हुआ हो, मैं एम० एस० सी० प्रथम वर्ष में पढ़ रहा था। घर की हालत अच्छी न होने से मैं ने पांचसात

लड़कों के साथ मिल कर विश्वविद्यालय के पास ही एक पुराने मुहल्ले की तंग गली में एक पूरा मकान किराए पर ले रखा था। दूसरे लड़के अपने कमरे के लिए एक-एक साथी ढूंढ़ लाए थे ताकि खर्च और कम हो जाए। मैं भी किसी साथी की खोज में था कि एक लड़का मेरे एक रिश्तेदार का पत्र ले कर मेरा पता पूछता हुआ आया। मैंने उसे अपने कमरे में जगह दे दी।

राजीव देखने में बड़ा सुन्दर और गठे हुए शरीर का था। वह मेरे पास ही के गाँव का रहने वाला निकला। हम में जल्द ही गाढ़ी मित्रता हो गई। वह हंसमुख, मिलनसार और साथ ही दबंग भी था। अपनी बातों से किसी का भी विश्वास पा लेना उस के लिए बाएँ हाथ का खेल था।

पढ़ने में राजीव की कोई खास रुचि न थी। वह ज्यादातर बाहर ही रहता। ड्रामा, वादविवाद, चुनाव वगैरह में हमेशा आगे रहता। हमें ज्यादा न पढ़ने की हमेशा एक ही दलील देता, "देखो, कितना ही आँखों पर जोर दो, फर्स्ट डिवीजन तुम्हें पाना नहीं है। वह तो···" फिर युवतियों की तरह आँखें मटकाते हुए कहता, "तुम जानते ही हो कि प्रोफेसर साहब अपने दिल के टुकड़े को फर्स्ट डिवीजन देंगे। तुम बनोगे वही क्लर्क या टीचर। फिर क्यों किताबें रटरट कर तंदुरुस्ती खराब करते हो? तिकड़में सीखो, समझे, तिकड़में। दाँवपेंच लगाओ। थर्ड डिवीजन आ गया तो बहुत समझो।"

राजीव की भी घर की हालत साधारण ही थी। खर्च की तंगी पड़ने लगी तो उसने एक अच्छा ट्यूशन ढूंढ़ लिया। पहले साल वह पास हो गया। लेकिन दूसरे साल आगे न खिसक सका। मैं पास हो कर उसी शहर के एक कालिज में साइंस का अध्यापक हो गया। यूनिवर्सिटी खुलने पर वह मेरे पास ही ठहरा। फेल हो जाने का उसे दुख बिलकुल न था। सैरसपाटों में वह पहले से भी अधिक रहने लगा। इस बार उसे दो अच्छे ट्यूशन मिल गए थे। उन्हीं से उस का खर्च चल रहा था।

वह अब सदा धन कमाने की बातें करता, यही सब सोचता रहता। कभी-कभी तो मुझे लगता कहीं रुपया-रुपया कहते-कहते वह पागल न हो जाए। किन-किन हथकंडों से कौन-कौन मालामाल हो रहे हैं, यही सब सब वह बताया करता। उस की बातों से यही लगता कि किसी भी समय अपने किसी दाँव से वह धनी बन सकता है। मेरी समझ में उस की बातें न आ पातीं। लेकिन उसे अपने ऊपर पूरा भरोसा था।

एक दिन वह अचानक गायब हो गया। यूनिवर्सिटी से पता चला कि वह वहाँ नहीं गया था। दोचार दिन तक वह नहीं आया तो मैंने सोचा कहीं किसी धंधे के फेर में चला गया है। रुपये की रटन तो उसे लगी ही थी। कहीं मौका देखकर चला गया होगा लेकिन पांचवें या छठे दिन उसे पुलिस वालों के साथ आते देखा तो मैं परेशान हो उठा। मालूम हुआ कि वह एक लड़की को ले कर भाग रहा था कि स्टेशन पर ही पकड़ा गया।

लड़की का बाप बदनामी के डर से खुद ही मामले को दबाना चाहता था। हम ने भी उसे समझाया। दरोगा को कुछ दे दिला कर मामला किसी तरह दब गया। राजीव मेरे सामने आँखें नहीं उठा पा रहा था। मैं जानता था कि औरों के लिए वह जैसा भी हो, मेरे लिए उसके हृदय में बड़ी इज्जत है। इसलिए फौरन सीधा सवाल पूछ कर उसे और अपमानित नहीं करना चाहता था। लेकिन वह किस तरह इस मामले में फंस गया, यह जानने का कौतूहल भी कम नहीं था। भय भी था कि कहीं आगे ऐसी ही कोई और वारदात कर बैठा तो मैं भी उसके कारण बेकार के झंझट में फँस जाऊँगा।

आखिर स्वयं राजीव से न रहा गया। झिझकते हुए मेरे पास आया और ग्लानि के स्वर में बोला, "जीवनदा, मैं तुम से कभी झूठ नहीं बोला। अब जा रहा हूँ तो झूठ बोल कर नहीं जाऊँगा। मैं ने उस लड़की को नहीं भगाया जीवनदा, उसी ने मुझे भागने के लिए मजबूर किया था।"

मुझे अविश्वास भरी नजरों से अपनी ओर देखते देख वह कुछ आवेश

में आ कर बोला, "विश्वास करो जीवनदा, मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ। तुम मुझे भीतर ही भीतर कोस रहे होगे। पर मेरा कसूर बहुत कम है। तुम जानते हो कि मैं इस लड़की की ट्यूशन करता था। रईस घर की है। कामधाम कुछ रहता नहीं। हर समय सस्ती प्रेम कहानियाँ और उपन्यास पढ़ा करती है। मेरे ऊपर रीझ गई तो मैं क्या करता ? भाग चलने की जिद उसी ने की। मैंने भी सोचा, लाला का जवाँई बन कर ही क्यों न जिंदगी भर आराम से रहा जाए।

"लेकिन उस पाजी लाला को पहले ही सब पता चल गया। पुलिस ले कर स्टेशन पर आ धमका। खैर, होनी को कौन रोक सकता है। हाँ, मेरे कारण तुम्हें जो परेशानी हुई उस के लिए मुझे माफ कर देना। आगे अगर कहीं कुछ होता दिखाई दिया तो तुम्हें पत्र जरूर लिखूँगा।" और वह चला गया। मैंने ऊपरी मन से उसे रोकना भी चाहा पर वह न माना।

कुछ ही महीनों बाद राजीव का पत्र आया। बंबई की मुहर लगी थी। लिखा था, "जीवनदा, बुरा या भला जैसा भी हूँ, हूँ तो मनुष्य ही। किसी को अपना समझे बिना यह जीवन बेकार लगता है। एक तुम्हीं हो जिसे अपने दिल की असली बात बता पाता हूँ, न लिखूँ तो दम घुटने-सा लगता है। आज यहाँ से जान बचा कर भागना पड़ रहा है। भई, गहरा हाथ मारने की जब सोची है तो बड़े-बड़े जोखिम भी उठाने ही पड़ेंगे। अब क्या कहूँ, जरा-सा चूक गया, नहीं तो इस समय लखपति बन गया होता।

"बात यह है कि अभी पक्का नहीं हो पाया हूँ। लक्ष्मी की प्राप्ति यदि ईमानदारी से हो सकती तो मुझ से बड़ा ईमानदार दूसरा खोजे न मिलता। ईमानदारी से तो तुम देख ही रहे हो सिर्फ छोटा-मोटा क्लर्क या मास्टर ही बना जा सकता है। वह मुझे नहीं बनना है। लक्ष्मी हर किसी को नहीं मिलती, यह भी पक्की बात है। इसके लिए कोइ न कोई विशेषता होनी चाहिए आदमी में।

"कोई छलकपट में उस्ताद होता है, तो कोई जालफरेव में। मेरी क्या विशेषता है, यह अब मैं भी जान चुका हूँ। इसका प्रमाण भी एक नहीं, कई बार मिल चुका है। तब घन्नासेठ की लड़की मेरे साथ भागी थी। तुम ने खुद ही देखा था लेकिन तुम को मेरे ऊपर पूरापूरा यकीन नहीं आया था। इस बार भी एक बड़े सेठ की लड़की मुट्ठी में आ गई थी। लाखों का सौदा था। लेकिन अभी मालूम देता है भाग्य अनुकूल नहीं है। सेठ जान गया और मेरी जान का ग्राहक हो गया। समझ लो, बालबाल बचा हूँ। पुलिस में पहुँचाने के बजाए उसने मेरे पीछे गुंडे छोड़ दिए हैं। भई,कुछ पाना है तो जान को हथेली पर रखकर चलना ही पड़ेगा। कहाँ जा रहा हूँ, इसका अभी मुझे भी पता नहीं है। लेकिन जहाँ भी पहुँचूंगा वहाँ कोई विशेष बात बनी तो तुम्हें जरूर लिखूँगा।"

तीन चार साल गुजरे होंगे, मेरा विवाह हो चुका था। मैं बच्चे के साथ बरामदे में खेल रहा था कि सामने से एक साधु को आते देखा। सुडौल शरीर और सुन्दर आकृति बड़ी आकर्षक लगती थी। गेरुए रंग के रेशमी कपड़े उसकी कांति को और भी बढ़ा रहे थे। लंबे घुंघराले बालों में वह सचमुच देवलोक का प्राणी लगता था। नजदीक आने पर उसे पहचानते हो आश्चर्य-चकित रह गया। वह राजीव था।

मेरे पाँव छू कर मेरी चकित दृष्टि को समझते हुए वह हंस कर बोला, "जीवनदा, यह भेष देख आश्चर्य हो रहा है ना। लक्ष्मी, जानते हो, बड़ी चंचल होती है। उसे साधने के लिए कोई भी खतरा बड़ा नहीं है। अब की सब पा लिया था जीवनदा, पर एक चेले ने गड़बड़ी कर दी। पुलिस को शक हो गया है सो बचने के लिए ये वस्त्र धारण किए हैं। घबड़ाना मत जीवनदा, रास्ते में पड़ता था, इसलिए तुमसे मिले बिना न रहा गया। मैं आज ही चला जाऊँगा।"

फिर उसने बताया कि किस तरह वह मारा-मारा इधर-उधर भटक रहा था कि सफेदपोश ठगों को उसके व्यक्तित्व ने मोह लिया। उन्होंने उसे अपने गिरोह में शामिल कर लिया और वह उनका सरदार बन बैठा।

मौज से उसके दिन कट रहे थे। रुपया तो मानो उस पर आकाश से बरसता रहता था। अपने रूप, यौवन और सूझबूझ से वह जिसे चाहता उल्लू बना कर काम निकाल लेता। कई बड़े-बड़े सेठों के नाम भी उसने बताए जिन्हें उसने अपनी मुट्ठी में कर लिया था। जरा-सी असावधानी हो गई, उसकी भी और एक चेले की भी, जिससे बात खुल गई। वह भाग निकला। चेला बच न पाया। वह जेल में हैं इस समय।

और आज वही राजीव सामने शिवजी का अवतार बना बैठा था। उसने एक आँख बंद करके इशारा किया था, इसलिए मैं भी पड़ोसी भक्तों के सामने जो कि अभी तक जमीन पर दंडवत पड़े थे, उसकी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए उसे प्रणाम करने को झुका। तभी वह गुरुगंभीर वाणी में मेरे भक्त पड़ोसियों का नाम ले कर बोला, "तुम लोग आज जीवनचंद्र को भी ले आए। बड़ा नास्तिक बनता होगा यह। आज आ ही गया। इसका हृदय विशाल है। बाहर से नास्तिक बनता है लेकिन अंदर से परमात्मा का सच्चा भक्त है। आज उसी की प्रेरणा से यहाँ आया है। तुम लोग इसे यहीं छोड़ कर बाहर जाओ। परमात्मा की यही इच्छा है कि मैं इसकी आत्मा को प्रकाश दिखाऊँ।"

पड़ोसियों ने जिस दृष्टि से मुझे देखा उसमें शायद उलाहना था, "हम जो कहते थे, उसमें हमेशा अपने विज्ञान की टाँग अड़ाता था। आज देखा, स्वामीजी अंतर्यामी हैं या नहीं? भाग्य खुलना था तुम्हारा, इसीलिए हमारे साथ चले आए।" मेरे सौभाग्य के प्रति ईर्ष्या का भाव भी उनकी आँखों में था।

मैं अकेला रह गया तो राजीव बोला, "जीवजदा, घबड़ाना मत, यहाँ से उधर कुछ सुनाई नहीं देता। भीतर भी आवाज नहीं पहुँचती। वहाँ सब अपने चेले हैं। कोई आशंका नहीं। आजकल मैं अवतार हूँ।"

मैं अपने कुतूहल को न रोक सका। पूछ ही लिया, "सुना है पार्वती भी हैं। कहाँ पा गए उन्हें?"

राजीव हंस पड़ा, "अब सब ठीक हो गया है जीवनदा। तुम्हारे यहाँ

साधु बन कर आया था न, उसी वेष में कुछ समय निकालने का विचार था। तुमने उस समय मुझसे क्या कहा था, याद है ?"

मुझे कुछ याद न आया।

वह बोला, "तुमने कहा था मैं देवलोक का प्राणी लगता हूँ। बस यही रूप सदा की तरह उस समय भी काम आया। जीवनदा, भाग्य कहो या संयोग, मैं संगम में नाव पर बैठा था कि तभी एक बूढ़े महंत वहाँ आ गए। सभी महंत एक से नहीं होते जीवनदा, एकाध अच्छे भी निकल आते हैं। वे सचमुच सरल और साधु पुरुष थे। अपना उत्तराधिकारी खोज लेने के लिए बड़े चिंतित थे। मंदिर की लाखों की आय थी। मुझे देखा तो बड़े प्रभावित हुए। साधुओं के वस्त्र तो पहने ही था मैं। तुम्हारी तरह उन्होंने भी मुझे देवलोक का प्राणी समझा। काफी दिन उनका सत्संग रहा। मैंने उन्हें तपस्वी, ऋषिमुनि होने का ऐसा विश्वास दिलाया कि एक दिन मुझे गले लगा कर आँसू बहाते हुए वे बोले, "मुझे तुम्हारे जैसा ही संत पुरुष चाहिए था।" मुझे महंत बना कर वे सन्यासी हो गए और पता नहीं कहाँ चले गए।

"मंदिर में सभी कुछ था जीवनदा, सभी प्रकार का ऐश्वर्य था। वहाँ मैंने धाराप्रवाह संस्कृत सीख ली। लेकिन वहाँ के बँधे हुए ढर्रे से मेरा जी ऊब गया। मैं अकेला रह कर आनंद उठाना चाहता था। ऐसी हालत में कभी पोल खुलने का भी तो डर है। मैंने जल्दी-जल्दी अपने भविष्य के लिए पूरा प्रबंध कर लिया। अब एक मिल खरीदने का विचार है।"

"मिल ?" मैंने चौंक कर पूछा।

"हाँ, हाँ, जीवनदा, लेकिन यहाँ नहीं दूसरे शहर में, दूसरे नाम से।"

"तो यह सब क्या रूप धरे हुए हो ?"

"बात किसी तरह न खुले, इस का भी इंतजाम करना था, जीवनदा महंत के बात अवतार की योनि धारण कर कुछ समय निरापद रूप से व्यतीत करना आवश्यक था। देख ही रहे हो कि कौन-कौन मेरे भक्त हैं।

फिर मेरे ऊपर शक किसे हो सकता है। अब देर नहीं है। बस एक ही वाधा और आई थी। वह भी अब पार हो गई।"

वह मेरी ओर देख कर हँसा, "बात यह है जीवनदा, मैं अपने भविष्य के लिये चारों ओर से जाल बुन रहा था। लेकिन मुझे इस बात का ध्यान ही नहीं था कि एक मकड़ी मेरे लिये भी चालाकी से अपना जाल बुन रही है।"

अब की मुझे भी हँसी आ गई, "यह कहो, मकड़ी के जाल में फँसने पर ही पार्वती···क्यों है ना ?"

राजीव अट्टहास कर उठा। बोला, "हाँ, हां, ठीक सोचा है जीवनदा। यहाँ के मजिस्ट्रेट की बहन मेरी भक्तिन बन गई थी। मैंने सोचा और युवतियों की तरह वह भी आती है। हाँ, यह सच है जीवनदा कि वह मेरी सब से प्रिय भक्तिन हो गई थी। लेकिन यह सब उसकी माँ की कारस्तानी थी। उसकी माँ मेरी सब बातें भांप चुकी थी। इसका मुझे कभी ख्याल नहीं आया। वह लड़की भी मुझ से यह बात छिपाये रही।"

"यहाँ के मजिस्ट्रेट तो अपने ही रिश्तेदार हैं। तुमने उनकी माँ को पहले नहीं देखा था क्या ?"

"भई, बचपन की बात है, अब याद नहीं। तभी देखा होगा इस औरत को।"

"अरे, यह औरत बड़े-बड़े घाघ मर्दों के कान काट चुकी है। तुम्हारे बारे में जरूर कहीं से सूँघ लिया होगा," मैंने कहा।

राजीव मुस्करा दिया, "लेकिन इस से कुछ बिगड़ा नहीं है जीवनदा। मुझे पार्वती को मंजूर करना पड़ा। क्या करता। कुछ और भी गड़बड़ हो गया था। इसलिये भी मजबूरी थी। मेरे धन का पूरा पता था उस औरत को। उसने सारे मामले का भंड़ाफोड़ करने की धमकी दी। तो जीवनदा, समझौता यह करना पड़ा कि पचास हजार रुपये उसकी लड़की के नाम करने पड़े और उससे ब्याह करने का लिख कर वचन देना पड़ा।"

"तो कौन महंगा पड़ा यह समझौता ? लड़की और रुपया तुम्हारे ही पास रहेंगे।"

"हाँ, सो तो है ही जीवनदा। सब कुछ जैसा हम चाहते हैं, वैसा कहीं होता है ? अरे हाँ···" वह अचानक जैसे सोते से जाग उठा। बोला, "तुम तो जीवनदा, मेरी ही बातें पूछते रह गये हो। अपनी भी तो कहो। इस शहर में कैसे आ गये ?"

मैंने उसे बताया कि प्रिंसिपल से न पटने पर इस्तीफा देकर यहाँ के 'सनातन कालिज' में नौकरी कर ली है। रहस्यपूर्ण ढंग से मुस्कराता हुआ वह बोला, "यहाँ भी वही हालत होगी। दूसरे तुमसे ऊपर चढ़ गये होंगे। आदर्श की झोंक में यों ही जिंदगी बिता दोगे। क्यों है यही बात कि नहीं ?"

मेरी चुप्पी को सहमति मान कर वह बोला, "अच्छा जीवनदा, तुम्हारे प्रिंसिपल चूणामणि ही हैं ना ?"

मैंने सिर हिला कर सहमति प्रकट की तो उसके होंठों पर कुटिल मुस्कान बिखर गई, "वह तो अपना परम भक्त है जीवनदा। अच्छा, दो चार दिन में जब सब सुनेंगे कि तुम्हारी तरक्की का हुक्म हो गया है और पिछला नुकसान भी पूरा होने वाला है···।"

बाहर भक्तों की जोर-जोर की आवाजों से उनके अधीर हो उठने का साफ पता चल रहा था। मैं उठ खड़ा हुआ तो राजीव बोला, "हाँ देखो, तीन-चार रोज बाद यह सुनाई देगा कि शिव और पार्वती के अवतार एका-एक गायब हो गये हैं तो तुम भी सब भक्तों के साथ आश्चर्यचकित होने का भाव दिखाना। मैं बाद में तुम्हें पत्र भेजूँगा। कभी आना जरूर, वहीं पार्वती को भी देख लेना।"

कमरे के बाहर निकला ही था कि पंडित श्यामनाथ आकर गले से लिपट गये। उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। रुँधे स्वर में बोले, "क्षमा कीजिएगा मास्टर साहब, मैं नहीं जानता था कि आप इतने बड़े भक्त हैं।"

●

पहला कदम

अंग्रेज चले गये। विद्रोही भारत के तेवर देख उन्होंने समय रहते निकल जाने में कुशल समझी। भारतीय शासक मस्तक ऊँचा किये हुए अंग्रेजों का स्थान ग्रहण करने के लिए जैसे ही कार्यालय में प्रविष्ट हुए, क्लर्क-चपरासियों की भारी भीड़ ने पूरी ताकत लगाकर 'जयहिन्द' का नारा लगाया। उनकी यह आवाज़ कार्यालय भवन के बाहर लाखों कंठों के जय-घोष से मिलकर चारों दिशाओं में गूँज उठी। विदेशी शासन के आतंक से कुचले हृदयों में एक सुखद भविष्य की कल्पना हिलोरें ले रही थी।

कार्यालय के भीतर अपने सुसज्जित कमरे में बैठे राय बहादुर भूपेन्द्र शर्मा बार-बार सिहर उठते थे। उन्हें 'जयहिन्द' का विजय-घोष अपने विरुद्ध युद्ध-घोष-सा लग रहा था। ये भूखे भेड़िये अब जरूर बदला लेंगे। उन्हें 'टोडी बच्चा' कहकर वे कितना कोसा करते थे, जैसे उन्हें समूचा निगल जाना चाहते हों। लेकिन अंग्रेजी ताक़त के सामने उनका बाल भी बांका न कर सकते थे वे। और अब वे ही उनके शासक बन कर आ गये हैं ?

भूपेन्द्र शर्मा को अपना सिर चक्कर खाता-सा प्रतीत हुआ। जिनके साम्राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता था, उनका राज ढक कैसे गया ? शेर गीदड़ कैसे बन गया। मरियल हिन्दुस्तानियों के हाथ में यहाँ का राज

सौंपकर चले जाना गीदड़ की तरह भागना नहीं तो क्या है ? लेकिन यह हो कैसे गया । अंग्रेज कभी जायेंगे, यह असम्भव कल्पना भला वे कैसे कर सकते थे । उन्हें कभी जरा-सा भी संदेह हुआ होता तो वे उनका आगे बढ़-बढ़ कर क्यों साथ देते । आज की इस परिस्थिति को आने ही क्यों देते । पर अब तो ये आ ही गये हैं । गनीमत इतनी है कि नरम दल के लोगों के हाथ ताकत आयी है । कम-से-कम फांसी से तो बचे रहेंगे वे । कहीं गरम सिरफिरे क्रांतिकारी ताकत पा गये होते तो ! शर्मा जी को सारे शरीर में एक सिहरन-सी अनुभव हुई । क्षण भर के लिए उन्हें ऐसा लगा कि उनकी योजना के अनुसार जो बागी गोलियों से भुन दिये गये थे, वे पलट कर उन्हें गोलियों से छेद दे रहे हैं ।

शर्मा जी ने कूटनीतिक चुप्पी साध ली । वे चुपचाप आफिस जाते और फाइलें निकाल कर वहाँ से बंगले को खिसक जाते । सबकी नजरों से ओझल रहकर इस अप्रत्याशित प्रचंड आंधी की सिर के ऊपर से निकल जाने की प्रतीक्षा करना ही उन्होंने उचित समझा । समय ही सब प्रकार के घाव भरता है, यह वे जानते थे । बस कुछ समय टल जाय तो इन नये शासकों का जोश स्वयं ही शान्त पड़ता जायेगा । तब वे स्थिति को फिर से संभाल लेंगे, इसका उन्हें पूरा विश्वास था ।

शर्मा जी आंधी की चपेट में आने से न बच पाये । पहला वार उनकी रायबहादुरी पर पड़ा तो वे बिलबिला उठे । जैसे किसी ने उनका कोई अंग बेरहमी से काट दिया हो । आधे जीवन की तपस्या के बाद उन्होंने यह वरदान अंग्रेजी सरकार से पाया था । यह उनकी सेवा का पुरस्कार, शक्ति का प्रतीक और प्रतिष्ठा का द्योतक था । अब क्या रह गया उनके पास ? सिर्फ नौकरी ।

शर्मा जी बेहद आतंकित हो उठे । कहीं उन्हें समय के पूर्व ही रिटायर कर दिया गया तो क्या होगा ? आज जो शासक बनकर आये हैं उन्हीं के उकसाने पर बाहर के लोग उनसे घृणा करते रहे हैं । यह तो अंग्रेजी शासन की धाक थी कि सामने सभी इज्जत करने पर मजबूर थे । अब

नौकरी भी गई तो···? गरम दिमागवाले पत्र उन्हें जेल में तक भेजने के लिए चिल्ला रहे हैं।

शर्मा जी को लगा सब उनके प्रति अन्याय करने पर तुले हुए हैं। आखिर उनका अपना क्या कसूर है? गरीब घर में पैदा हुए। बड़ी मुश्किल से क्लर्की पाई। अंग्रेज अफसरों की नज़र पड़ गई उन पर। उन्होंने उनकी योग्यता की कद्र की और इस पद पर पहुँचाकर उपाधि से उन्हें अलंकृत कर दिया। यह अंग्रेजों की कद्रदानी थी। उनका क्या दोष था? परिस्थितियाँ उन्हें जिधर ले गयीं वे गये। सरकार के खिलाफ जो बगावत पर उतर आये, उन्हें कुचलना क्या उनका कर्तव्य नहीं था?

शर्मा जी ने नीचे क्लर्कों की नजरें तक फिरी हुई देखीं तो उनका दिल मसोज उठा। जो उनके सामने काँपते हुए आते थे, आज उनकी हिम्मत इतनी बढ़ गई है कि सीना तानकर उनसे बराबरी के लहजे में बात करते हैं, जैसे इन्हीं का राज हो गया हो। दुर्दिन आये हैं। जो न देखना पड़े वह कम है। अनायास ही तीव्र वेदना मिश्रित आह उनके मुँह से निकल गई। आज वे कर ही क्या सकते हैं। उन्हीं की नौकरी का, उनके भविष्य का ठिकाना नहीं है। पता नहीं कल क्या हो जाय?

शर्मा जी सिर झुकाए दूसरे वार के इन्तज़ार में बड़े कष्ट से दिन काटने लगे। लेकिन जब धीरे-धीरे दिन महीनों में बदले, एक वर्ष बीता, दूसरा वर्ष आया और कहीं कोई और हरकत न हुई तो शर्मा जी ने जैसे एकाएक सोते से जागकर चारों ओर नज़र दौड़ाई। यह क्या? कहीं भी कोई और जोखिम नहीं? वे स्व-निर्मित दिरबे में यों ही सिर छुपाये पड़े रहे। चोपड़ा एक ही छलांग में डिप्टी सेक्रेटरी हो गया था। भार्गव डाइ-रेक्टर बन चुका था। यह ठीक है कि चोपड़ा और भार्गव उनकी तरह राय-बहादुर नहीं थे। लेकिन इससे क्या। थे तो वे भी अंग्रेजों के ही परम सेवक। उनके मन्त्री जी ने जनता के कल्याण की कामना प्रकट की तो उन दोनों ने ऐसी योजनाएँ बनायीं कि उन्हें चलाने के लिए पहले उन दोनों को तरक्की देना मन्त्री जी के लिये आवश्यक हो गया। अंग्रेजों के जमाने

में दोनों उनसे टक्कर लेने की कभी हिम्मत न करते थे। इस बार आगे निकल गये।

शर्मा जी समझ गये कि अब कोई भय नहीं है। मंत्रियों को राजकाज का कोई ज्ञान नहीं है। अफसर ही उनके हाथ पैर बन गये हैं। अगर खोये हुए समय की पूर्ति उन्होंने जल्द न की तो वे मैदान के बाहर ही पड़े रह जाएँगे। उन्होंने अपने ऊपर के बड़े अफसर और मंत्री जी के पास फाइल लेकर स्वयं जाना शुरू कर दिया। इस नई हलचल में भविष्य की आशा फिर जाग उठी। राय बहादुरी जाने का गम भी कम होने लगा। केवल उसकी याद से कभी-कभी दिल कसक उठता। मंत्री जी के पास पहली बार जाने पर उन्होंने उन्हें उसी तरह प्रणाम किया जिस तरह वे अपने अंग्रेज शासकों को करते थे। अन्तर केवल इतना रखा कि अंग्रेज शासक के सामने वे दरवाजे से ही आधा झुककर सलाम करते हुए जाते थे। इस बार दोनों हाथ जोड़कर आगे बढ़े। अंग्रेज शासकके पैर वे नहीं छूते थे क्योंकि उन्हें यह पसन्द नहीं था। मंत्री जी के उन्होंने दोनों पैर छुए। मंत्री जी की आँखों की पुतलियों की चमक से उनके अनुभवी मन ने तोड़ लिया कि वे इससे पूरी तौर से संतुष्ट हैं। संतुष्ट क्यों न हों। सभी धर्मवाले परमात्मा को झुककर प्रणाम करते हैं। क्यो ? इसीलिए कि सेवक भाव से देवता भी प्रसन्न होते हैं। फिर मंत्री जी तो मनुष्य हैं। ये कैसे अप्रभावित रहते ? लौटते समय मन्त्री जी की ओर पीठ फेरे बिना ही इस प्रकार बाहर को आये मानों इष्टदेव के दर्शन कर आ रहे हों।

शर्मा जी ने देखा उनके मन्त्री जी को समाजवाद शब्द बड़ा प्रिय है। अपने भाषणों और वार्ता में वे समाजवाद की स्थापना पर सदा जोर दिया करते हैं। इस शब्द का अर्थ अंग्रेजों के जमाने में बगावत माना जाता था, यह शर्मा जी से अधिक भला कौन जानता था। लेकिन समय के फेर को कोई क्या करे ? एक जमाने में जो चीज राजद्रोह मानी गई, वह इस समय राज्यभक्ति की कसौटी समझी जायेगी। जो हो, इस सबसे उन्हें क्या लेना-देना है। जो मालिक चाहेगा वही वे करेंगे। अंग्रेज साम्राज्य की रक्षा

चाहते थे, सो उन्होंने वही किया। अब मन्त्री जो समाजवाद चाहते हैं तो वही सही।

अब तक समाजवाद क्या है, यह जानने की शर्मा जी को कभी जरूरत हो महसूस नहीं हुई थी। उनका काम तो सिर्फ़ इतना ही था कि जो यह नाम लेकर अंग्रेज सरकार का विरोध करेंगे उनको जेल में ठूंसने की योजनाएँ बनायें। लेकिन अब इसका अर्थ जानना ही होगा। उन्हें याद आया कि अंग्रेजों के जमाने में इस नाम को लेने वाले सदा गरीबों का रोना रोया करते थे। उनकी जब्त किताबों में भी अंग्रेजी साम्राज्य को उखाड़कर गरीबों को ऊपर उठाने का ही जिक्र रहता था। अंग्रेजी साम्राज्य तो उखड़ ही गया। अब समाजवाद का अर्थ गरीबों को उठाना ही रह गया। मतलब यह कि जो भी योजना बनायें उसका मुख्य विषय गरीबों की उन्नति होना चाहिए।

शर्मा जी ने कितनी ही योजनाएँ सोचीं, लेकिन कोई भी ठीक नहीं जंच रही थी। वे बड़े उधेड़बुन में पड़े ही थे कि अचानक ही एक योजना का सूत्र उनके हाथ आ गया। उन्हें लगा कि उनके भाग्य-सूर्य को ढके हुए बादल छंटने लगे हैं। मन्त्री जी ने बुलाया तो उन्हें एक और काम के सिल-सिले में था लेकिन लगे हाथ उन्होंने वहाँ बैठी एक महिला से उनका परिचय कराते हुए कहा, "देखिये, शर्मा जी, ये इस शहर की मशहूर सामाजिक कार्यकर्त्री कुमारी शीला वर्मा हैं। इनकी योजना जरा आप भी देखिए। मुझे तो अच्छी लगी है। अगर आपको ठीक लगे तो इस योजना के लिए इनसे अच्छी महिला-सलाहकार कौन हो सकती हैं?

शर्मा जी मन्त्री जी की इच्छा अच्छी तरह समझ गये। भिन्न भाषा और भिन्न संस्कृतिवाले चालाक अंग्रेजी शासकों के मन की बात तक तो वे ताड़ लेते थे, ये तो अपने ही देश के, अपने ही जैसे हैं। हाँ, शुरू में इनको समझने में उन्हें गलतफहमी जरूर हो गई और काफी समय यों ही निकल गया। एक दहशत-सी भर गई थी उनके कलेजे में, जिसके कारण वे ठीक-ठीक सोच-समझ न पाये। खैर अब भी कोई ज्यादा नहीं बिगड़ा है। भाग्य अनुकूल रहा तो राय बहादुरी का मुआवजा दूसरी शक्ल में उन्हें मिल जायेगा।

कुमारी शीला वर्मा की शर्मा जी ने उतनी ही इज्जत की जितनी वे मन्त्री जी की करते थे। उनकी योजना की रूपरेखा सुनी तो शर्मा जी का मन हरा हो गया। मन्त्री जी की प्रिय समाजवाद की कुन्जी उन्हें मिल गई। पतित स्त्रियों का उद्धार समाजवाद नहीं तो क्या है। उनके उद्धार की एक बढ़िया-सी योजना बन जाय तो सबका काम बन जायगा। शीला वर्मा का भी, उनका अपना भी और मन्त्री जी का भी। वे बड़े परिश्रम से इस योजना की तैयारी में जुट गये।

योजना मन्जूर हो गई। 'पतित पावन आश्रम' खुल गया। कुमारी शीला वर्मा की बहन कुमारी प्रमिला वर्मा उसकी निदेशिका नियुक्त हुई। शर्मा जी तरक्की पाकर उपसचिव हो गये। प्रमिला शहर की क्लब-सोसाइटियों की जान ही थीं। जहाँ बैठ जातीं पूरी महफिल जमा लेतीं। रासरंग का तो दौर ही चलपड़ता। शर्मा जी से घनिष्टता बढ़ाते उन्हें देर न लगी। शर्मा जी को भी इससे कोई आपत्ति न थी। वे इसका लाभ समझते थे। अंग्रेज अफसरों के साथ उन्हें खुश रखने के लिए वे सुरा और सौन्दर्यपान के आदी हो चुके थे। इधर शासन परिवर्तन के कारण सिर्फ सुरा से अपने गम को भूले रहने का प्रयत्न करते रहे। अब सब डर दूर हो गया था। मन्त्री जी का शीला वर्मा से निकट संपर्क उनसे छिपा न था। प्रमिला का बढ़ाया हुआ हाथ उन्होंने फौरन ग्रहण कर लिया।

शर्मा जी जब भी इच्छा होती पतित पावन आश्रम का मुआइना करने जाते, प्रमिला अक्सर बाहर ही रहतीं। क्लब-सभा-सोसाइटियों से ही फुरसत न मिलती थी उन्हें। नीचे की उप-निदेशिका शर्मा जी की सुख-सुविधा का पूरा प्रबन्ध करतीं। उनकी स्टेनोग्राफर रह चुकी थीं। इस पद पर उनका चुनाव उन्होंने ही किया था। शर्मा जी की भौंहों के इशारे पर सब काम करतीं। कोई पतित स्त्री शर्मा जी की नज़रों में चढ़ जाती तो नियम के विरुद्ध होने पर भी कभी-कभी शर्मा जी रातको देर तक वहीं रहते। सबमे अलग एक कमरे में सुरा की व्यवस्था पहले से ही रहती।

उस दिन शर्मा जी को सुबह से ही पानी पीने की भी फुरसत नहीं मिली थी। तीसरे पहर उन्हें मंत्री जी के साथ दिल्ली के विशिष्ट नेताओं को आश्रम दिखाना था। वहाँ जलपान का आयोजन भी था। आधा घंटा लेटकर कुछ आराम कर लेने के लिए वे बँगले पर आ गये थे। आज उन्हें यह थकान बड़ी सुखद लग रही थी। अपना राज आखिर अपना ही होता है। मंत्री जी से कितनी आत्मीयता हो गई है उनकी। अंग्रेज शासक उन्हें मानते जरूर थे, लेकिन उनसे दूरी हमेशा बनी रहती थी। भारतियों को वे सदा घृणा की दृष्टि से देखते थे। उन्हें कभी ऊँची जगहों नहीं रखा जाता था। मंत्री जी ने आते ही जो पद उन्हें दे दिया है वह अंग्रेजी शासन में वे कभी भी न पाते। कितने घाघ होते थे ये अंग्रेज? किस ढंग से यहाँ से रुपया ले जाकर अपने देश को पालते थे! अपने साम्राज्य के लाभ के लिए जान-बूझकर जहाँ चाहते नियम-कानून में ढील दे देते। वैसे कोई उन्हें बेवकूफ बनाकर काम निकाल ले, यह बड़ा मुश्किल था। काम के मामले में किसी को बख्शते नहीं थे। लेकिन मंत्री जी...शर्मा जी के होठों पर हल्की मुस्कान बिखर गई। जो समझाओ वही ठीक हैं। सिर्फ उनका काम ढंग से चलाते रहिए। अपनी गलती ही तो उस पर कोई आदर्श का मुलम्मा चढ़ाकर समझा दो। बस सब माफ।

टेलीफोन की घंटी बजी तो भौंहें चढ़ाकर कुपित मन से शर्मा जी ने रिसीवर उठाया। जनाना अस्पताल से कुमारी प्रमिला वर्मा घबड़ाई आवाज में कह रही थीं, "आप फौरन यहाँ चले आइए। बड़ा जरूरी मामला है।" शर्मा जी ने टालना चाहा तो वे बोलीं, "फोन पर नहीं बता सकती। बाद में बात बढ़ी तो आप बुरे फँस जायेंगे।" शर्मा जी मन मारकर कार दौड़ाते हुए गये।

अस्पताल में बड़ी सरसनी फैली थी। शर्मा जी ने अपने आते ही सबको एकदम चुप होते देखा तो वे चिढ़ गये। फिर जो बातें सुनीं उनसे उनका क्रोध उभड़ गया। पतित पावन आश्रम से एक जवान लड़की बच्चा

जानने के लिए अस्पताल लाई गई थी। यह कोई अनहोनी बात नहींथी । अकसर आश्रम में ऐसी पतित स्त्रियाँ आती रहती थीं। लेकिन उस लड़की से जब बच्चे के बाप का नाम लिखाने को कहा गया तो उसने निस्संकोच शर्मा जी का नाम बताया। समझाने-बुझाने पर भी जब वह शर्मा जी के नाम का ही रट लगाती रही तो अस्पताल की सुपरिंटेन्डेन्ट ने प्रमिला को फोन करके बुला लिया था। उनके सामने भी वह लड़की अपने ही हठ पर जमी रही। प्रमिला ने शर्मा जी को बुला लिया।

शर्मा जी भीतर-ही-भीतर परेशान हो उठे। आज तक इतनी लड़कियों-औरतों से उनका साबका पड़ा लेकिन कभी ऐसा नहीं हुआ। इस पतित स्त्री में इतनी हिम्मत! हिम्मत क्या, कमअकल है। उन्हें याद पड़ा वह उनके पसंद आयी थी। है बला की खुबसूरत, असल में वह समझ नहीं पा रही है कि उसे क्या कहना चाहिए। पढ़ी-लिखी औरतों की तरह बात बनाना नहीं जानती। वे उसे जोर से डाँटकर सारी बातों से मुकर सकते हैं। उनका कुछ न बिगड़ेगा। लेकिन कहीं बात उनके विरोधियों तक पहुँच गई तो पतित पावन आश्रम का अब तक जो नाम फैला है उस पर लोगों को सन्देह हो जायगा। उनका सारा करा-कराया मिट्टी में मिल जायगा। क्या ठिकाना अस्पताल का ही कोई आदमी कहीं बाहर जाकर खबर पहुँचा दे? अखबार वाले मिर्च-मसाला लगा-लगाकर खबरें छापेंगे। अभी उन्हें मंत्री जी के यहाँ भी जाना है। क्या किया जाय? शर्मा जी बड़े उधेड़ बुन में पड़ गये।

लेडी सुपरिन्टेन्डेन्ट शर्मा जी का पद, उनकी प्रतिष्ठा, सभी कुछ जानती थीं। उनसे उसका भी कभी मतलब पड़ सकता था। अभी उन्हें इस परेशानी से वह उबार दे, तो एक अहसान तो उनपर बना ही रहेगा। धीमी आवाज में शर्मा जी से बोली, 'गँवार है। बकझक नहीं रोकेगी। किसी नौकरचाकर से अँगूठे का निशान लगाकर बाप के खाने की पूर्ति करवा दीजिए। इसके दिमाग में गड़बड़ी लगती है।' वह बानर से गंभीर

बनने का प्रयत्न करने पर भी ओंठों के कोनों पर आई मुसकान को छिपा नहीं पा रही थी।

शर्मा जी ने प्रशंसा की दृष्टि से लेडी सुपरिन्टेन्डेन्ट की ओर देखा। उन्हें गजाधर की याद आ गई थी। वे फौरन कार में बैठे और उसे तेजी से बँगले की ओर दौड़ा दिया। बेचारा हमेशा से एक औरत के लिए तरसता रहा है। कद में नाटा, देखने में काला और एक टाँग सूखी हुई है, तो यह प्रकृति का दोष है, वह क्या करे? माना वह जड़बुद्धि है। तो क्या जिसे बुद्धि नहीं उसे औरत ही न मिले। दूसरे नौकर-चाकर ब्याह के नाम पर कितना शोषण करते हैं उसका। बेचारा ठगा जाता है। उनसे शिकायत करने आता है और कितना ही क्यों न समझाओ, ब्याह के नाम पर फिर जो कुछ पास में होता है खर्च कर डालता है।

शर्मा जी को एक दृश्य याद आ गया तो ओंठों में मुसकराहट आ गई। लान की ओर से जोर-जोर की आवाज़ें सुन उन्होंने खिड़की के बाहर देखा तो सभी नौकर-चाकर मुँह छिपाने की कोशिश करते हुए हँसते-हँसते दुहरे हुए जा रहे थे। गजाधर गधे के ऊपर पूँछ की ओर मुँह करके बैठा था। उसके सिर पर अखबार की एक लम्बी नोकदार टोपी पहनाई गई थी। कनस्टर का बाजा बज रहा था। गजाधर शांत और गंभीर होकर बरात चलने की प्रतीक्षा कर रहा था। कनस्टर जोर-जोर से बजा और एक नौकर ने आगे बढ़कर गधे को से बेंत मारा तो वह ऐसा भड़का कि गजाधर जमीन पर चारों खाने चित्त गिर पड़ा। सब लोग वहाँ से खिसक गये। गजाधर आँसू बहाते हुए उनके पास आया। इस बरात पर उसका काफी खर्च करवा दिया गया था। उन्होंने सबको बहुत डाँटा था। पर मन-ही-मन वे भी गजाधर की दशा पर हँसे बिना न रह सके थे।

कार से उतरते ही शर्मा जी ने गजाधर को बुलाया और उसको शादी तय हो जाने की बात बताई। खुशी के मारे उसके मुँह से बोल भी न फूट पाया। मालिक ने उसे कभी नहीं भरमाया था। अपनी

कृतज्ञता प्रकट करने का और कोई तरीका उसे न सूझा तो उसने मालिक के पैर पकड़ लिये।

शर्मा जी ने गजाधर को कार पर बैठाया तो उसे लगा जैसे वह सातवें आसमान पर उड़ा जा रहा है। अस्पताल में उससे जल्दी से एक रजिस्टर पर अँगूठा लगवाया गया। उसे जब बताया गया कि वह एक बच्चे का बाप भी बनने वाला है और कुछ ही दिनों में अपनी पत्नी और बच्चे को अपने साथ ले जा सकता है तो बेहद खुश होकर उसने शर्मा जी के पैरों पर सिर रख दिया।

शर्मा जी ने गजाधर को रिक्शे पर लौटा दिया और स्वयं मंत्री जी की कोठी की ओर कार दौड़ाई। मन बड़ा प्रसन्न था। थकान तो पता नहीं कहाँ गायब हो गई थी। एक गरीब की तमन्ना उनकी बदौलत पूरी हो गई थी। बच्चे के पालन-पोषण में वे भी गजाधर की मदद कर देंगे। मंत्री जी को भी जाकर बतायें कि एक मजदूर ने एक पतित स्त्री से विवाह कर उसका उद्धार किया है। कितने खुश होंगे वे। जरूर ही इसे पतित पावन आश्रम का समाजवाद की ओर पहला कदम मानेंगे।

वचन

अखबार एक किनारे को सरका देता हूँ। पढ़ने को है ही क्या ! हिमा-लय से कन्याकुमारी तक हाहाकार। पेट भर राशन की माँग पर लाठी-चार्ज, गोली वर्षा, बसें जलाई जा रही हैं। वेतन, बोनस की बढ़ती हुई माँगें। लेकिन उत्पादन में वृद्धि का उत्साह कहीं भी नहीं।

छुट्टी का दिन है। मन हलका करने के लिए एक जासूसी उपन्यास लेकर खोलता हूँ। जयदत्त का पत्र मेज पर गिर पड़ता है। घुटन सो अनुभव होने लगती है।

जयदत्त बचपन में मेरा सहपाठी था—बड़ा ही भावुक, हिम्मती और आदर्शवादी। मैं सीधा-सादा और कुछ-कुछ दब्बू। ब्रिटिश साम्राज्यशाही के पैर उखाड़ फेंक देने का महात्मा गांधी का उद्घोष देश भर में गूंज उठा। मैं डरा, अलग रहा। जयदत्त आकंठ सत्याग्रह आन्दोलन में कूद पड़ा। इसके लिए उसने भरपूर कीमत चुकाई। गोरों का घोर आतंक। खुलेआम मदद करने से हर कोई डरता। जोखिम मोल लेकर चुपके-चुपके की हुई गरीबों की थोड़ी बहुत सहायता से होता भी क्या। बूढ़े माँ-बाप कष्ट में मरे। पत्नी भी ज्यादा साथ न दे सकी, पुत्री को छोड़ चल बसी। बिना माँ की लड़की, बाप लम्बी कैद में, निर्धन मौसी ने उसका ब्याह रचाया।

स्वराज्य हुआ। जिनके हाथ में शासन आया, वे जनता की समस्याएँ सुलझाने के बजाए खुद उसी के लिए एक समस्या बन गए। जयदत्त जैसे

लोग, जिनका स्वाभिमान और देश के लिए त्याग की भावना बना रही, वहीं रह गए, जहाँ वे थे। सिर्फ कुर्क हुई जमीन उसे वापस मिल गई। लड़की को वर्षों के अरमान के बाद संतान हुई, लेकिन वह स्वयं दुखी जीवन से मुक्ति पा गई।

माँ-बाप और पत्नी को जो ममता, जो स्नेह, जयदत्त नहीं दे पाया था, वह उसने ब्याज सहित नातिन पर निछावर कर दिया। अपने लिए कोई चाह उसे न थी। लेकिन नातिन को आँख का तारा बना कर पाला-पोसा और पढ़ाया। उसी नातिन के लिए आज वह बेहद परेशान है। पत्र में उसके हृदय की वेदना फूटी पड़ती है। वह इतना ही चाहता है कि उसके ममेरे भाई ने उसकी नातिन का ब्याह जहाँ ठहराया है, उसमें कृपानिधान शर्मा को घपला करने से जिस तरह भी हो, रोकूँ।

दूर देहात में जयदत्त बेचारे को क्या खबर, वह किसके फंदे में फँस गया है। जयदत्त का ममेरा भाई कहाँ जा पड़ा कृपानिधान के घर में। लड़की वालों से कमीशन लेने के बाद भी वह कितनों की जिन्दगियाँ चौपट कर चुका है, इसकी कोई गिनती नहीं है। उसका भाई और भाई का लड़का, जिससे जयदत्त की नातिन की शादी तय हुई है, क्या कृपानिधान से भिन्न होंगे? क्या बात करूँ इस कृपानिधान से? मैं आगे बढ़ूँ और वर भी खराब हुआ, बदमाश निकला, तो अनजाने में एक गलत काम का भागीदार बन जाने की ग्लानि मुझे नहीं कचोटेगी! बात काफी आगे बढ़ चुकी है। लड़की का नाजुक मामला। समय निकलता जा रहा है।

अचानक याद आ जाती है। पत्नी को पुकारता हूँ, "क्यों, मधुलता, कृपानिधान के आज यहाँ आने का संदेश किसने तुमको दिया है?"

'सद्दी काकी ने आज सुबह ही दूध लेते समय बताया था," रसोई से ही पत्नी अपना मंतव्य सुना देती हैं।

"कै बजे तक आएँगे, कुछ बताया?"

"क्या बजा होगा?"

"नो !"

"तो आते ही होंगे।"

"किस काम से आ रहे हैं, कुछ मालूम है ?" उसने फिर पूछा।

"होगा कुछ ब्याह का चक्कर," रसोई के काम में मगन पत्नी अधिक बोलने के मूड में नहीं प्रतीत हो रही है।

जासूसी उपन्यास को जिस पृष्ठ पर छोड़ा है, उसके आगे देखने ही जा रहा हूं कि बाहर किसी के आने की आहट सुनाई पड़ने लगी है। तेजी से जाकर दरवाजा खोलता हूं। कृपानिधान शर्मा ही हैं। भरा शरीर, पेट कुछ बाहर निकला हुआ, चमकती आँखें, चुभती नजर, दबी नाक, मोटे होंठ, मुंह फैला हुआ, सफेद टोपी, कमीज और धोती पहने हुए। डबल सोल वाला जूता, जिसकी कई दिन पुरानी पालिश पर धूल की तहों पर तहें चढ़ी हुई।

"आइए, शर्माजी, बैठिए, सब ठीक है न," एक कुरसी की तरफ इशारा करने के बाद, कैसे, क्या पूछूं, इसी में मन उलझने लगता है।

हो, हो, हो, की गगनभेदी न सही, ऊपर छत को भेद सकने वाली बुलंद हँसी। ऐसा कुछ कहा नहीं है मैंने। फिर इतनी ठहाका क्यों ? हँसी इतनी उन्मुक्त कि कृपानिधान को न जानने वाले को निश्छल हास्य का भ्रम हो जाए। लेकिन दांत इतने लम्बे और पीले कि पहली नजर में किसी हिंस्त्र पशु की आकृति का आभास होने से अनायास एक हल्की सिहरन अनुभव होती है।

"ठीक क्यों नहीं होगा ? आप जैसे सज्जन लोगों की कृपा हो तो सब ठीक क्यों न रहेगा ? आपको क्या मालूम, आपके पिताजी से बहुत पुरानी पहचान है मेरी। अहा, इतने सज्जन, उदार व्यक्ति अब कलियुग में कितने रह गए हैं। मुझ पर बड़ा ही स्नेह है उनका !" कृपानिधान धाराप्रवाह बोला जा रहा है। शायद काम के वक्त वाणी की यह प्रवाह

उसकी आदत ही हो।

सोच रहा हूँ कि किसी प्रकार प्रसंग निकाल कर जयदत्त की नातिन को व्याह की वात उठाऊँ। तभी कृपानिधान का स्वर कान में बज उठता है। "घरवाली भीतर ही हैं।"

फिर वही 'हो, हो' का जोरदार ठहाका, "आपकी पत्नी तो लक्ष्मी है, लक्ष्मी, साक्षात अन्नपूर्णा। क्यों न हो आखिर वेटी किसकी है, सतयुगी पिता की। ऐसा अचारविचार, ऐसी निष्ठा, अब कहाँ देखने को मिलती हैं?"

प्रशंसा झूठी की जा रही है, जानते हुए भी अच्छी लग रही है।

पत्नी आई। कृपानिधान के पैर छू कर शिष्टतावश खड़ी रही।

"आयुष्मती भव, सौभाग्यवती भव", के उच्च घोष के बाद ही हो, हो, हो, के अट्टहास की पुनरावृत्ति। पत्नी के प्रति अत्यधिक आत्मीयता का स्तर। "आप तो छोटी ही हैं। आपको कैसे मालूम होगा, आपके पिताजी का मुझ पर कितना स्नेह है! शंकर के व्याह में दुखी स्वर में उन्होंने मुझसे कहा था, 'कृपानिधान, आगे क्या होगा। अब तुम जैसे कर्मकांडी पंडित रह कितने गए हैं!'...आप तो जानती ही होंगी। शंकर का व्याह मैंने ही निश्चित करवाया था।

पत्नी चुप रहीं!

शंकर के व्याह में कृपानिधान ने काफी रुपया घसीटा था, ऐसी गरम खवर थी। लड़की पैर से कुछ लचकती थी। इससे कन्या पक्ष से ज्यादा भाव कृपानिधान ने वसूला था। व्याह के बाद शंकर गरम हुआ था कृपा-निधान पर, लेकिन फिर वेकार समझ सब्र कर लिया उसने।

कृपानिधान दूसरी ही बात विना जरा सी भी झिझकहिचक से कह रहा है, "उस लड़की को इतना अच्छा वर कहाँ मिलता, बताइए। थोड़ा सा पैर में खोट है। लेकिन कितनी सुशील और शिष्ट है। उच्च कुलीन वंश की है। वंश देखा जाता है, या पैर। सोचिए, आदमी व्याह क्या

पैर से करता है ? मैं तो जरूरतमन्द लोगों का जितना बन पड़ता है, ख्याल रखता हूँ। लोग कहते हैं, पैसे लिए मैंने, कहने दीजिए ! दक्षिणा मैंने जरूर ली है, जो कि ब्राह्मण का हक है। मैं जानता हूँ कि एक लड़की, जिसकी शादी शायद होती ही नहीं, एक अच्छी जगह लग गई।"

पत्नी चली गई।

झूठ कितना है, सच कितना, कैसे मालूम हो। जो बात छिपा कर लंगड़ी लड़की को ब्याहने के लिए घूस देते हैं, वे भला क्यों बोलेंगे। दूसरों के पास प्रमाण क्या है। कृपानिधान का भी क्या दोष ? जवान लड़के-लड़कियों की शादियाँ होती ही हैं। जात-पात, गरीब-अमीर, रूप-रंग, लेन-देन की संकरी अंधेरी पगडंडियों में लड़कियों के लिए लड़कों की खोज, तिनका भर भी इधर-उधर मुड़े बिना करनी ही है। ऐसे में कृपानिधान की धोखाधड़ी का धंधा पनपना क्या मुश्किल है !

पत्नी ने चाय, मिठाई लाकर कृपानिधान के सामने रखी। मिठाई मुँह में डाल, हो, हो, हो, के उन्मुक्त हास्य के साथ वह बोला, "इनके भाई इम्तहान पास कर ऊँचे अफसर हो गये हैं। क्यों न हों। लड़के किस के हैं। आखिर बाप का पुण्य फलेगा कि नहीं ? आज-कल के लोग कहते हैं, धर्म-कर्म से कुछ नहीं होता। यही प्रत्यक्ष प्रमाण देख लीजिये !'

कृपानिधान गाड़ी किस ओर खींचना चाह रहा है, यह अंदाज ठीक न लगा पाने से मैंने दबे स्वर में कहा, 'हाँ, अच्छे जगह तो पा गया है।"

कृपानिधान उमङ्ग में भर कर बोला, "मैंने उनके लिए एक बहुत उत्तम लड़की ढूँढ़ी है। समझ लीजिए, बिलकुल राधा-कृष्ण का सा जोड़ा होगा। लड़की लाखों में नहीं, करोड़ों में एक है। देखने-सुनने, काम-काज, पढ़ाई-लिखाई, बोल-चाल, फैशन, सभी में उसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता !"

धाराप्रवाह वाणी रुकना ही नहीं चाह रही है। मेरे कान खड़े हो जाते हैं। 'तो इसीलिए इन महानुभाव का पदार्पण हुआ है।' उसकी

बातों में फौरन ब्रेक लगाने के लिए शुद्ध हृदय से झूठ बोलने में ही खैर समझी, "देखिए, पंडित जी, आपने अच्छी लड़की ही ढूँढ़ी होगी।"

मैंने एक काले-कलूटे लड़के का सुन्दर लड़की से ब्याह कराया। वे आज भी आशीष देते हैं।"

"क्यों नहीं, क्यों नहीं, पंडित जी," मैंने जल्दी से उसकी बात काटी, "निर्मल हृदय से जो काम किया जायेगा, उसमें आशीष निश्चित ही मिलेगी!"

कृपानिधान की वाणी में फिर प्रवाह आने को ही था कि मैंने कहा, "पंडित जी, आप उस लड़की की जन्मकुंडली लाये हैं?"

"हो, हो, हो! मेरी जेब में एक नहीं, सैकड़ों जन्मकुंडलियों का पुलिंदा है। कर जग का भला! यही मेरा कौल है।"

कृपानिधान की जिह्वा की रफ्तार तेज होने से पहले ही उसके हाथ से कुण्डली लेकर मैंने कहा, "पण्डित जी, पत्नी के भाई का विवाह ठहराएँगे तो उसके माँ बाप ही, लेकिन यह कुण्डली भेज कर मैं उनको लिख दूँगा, 'इस पर पहले विचार करें। यह लड़की जरूर अच्छी ही होगी।"

"बातचीत आगे बढ़ने पर लड़की को दिखा दिया जाएगा। आज कल के लड़के यही पसंद करते हैं।"

"बिलकुल ठीक, बात-चीत जैसे ही आगे बढ़ेगी, यह भी हो जायेगा।"

अब मौका देख कर मैंने पूछ लेना ही ठीक समझा, "पण्डितजी, जयदत्त जी की नातिन के ब्याह में क्या कष्ट है आपके भतीजे के साथ?"

हो, हो, हो, के प्रचंड हास्य के साथ हृदय में सांत्वना उँडेलती हुई सुमधुर आवाज, "सबका भला, तो अपना भला, यही मेरा ध्येय है। जयदत्त जी का काम सब ठीक करवा दिया है मैंने।"

"ठीक करवा दिया," मेरे स्वर में अनायास ही कृतज्ञता का भाव मुखर हो गया। 'यह आदमी इतना बुरा तो नहीं मालूम देता। कहीं यह

किसी गलतफहमी का शिकार तो नहीं हो रहा है।' तत्काल मन में संदेह उभरा, 'कोई और चाल तो नहीं चल रहा है यह।'

"आप कैसे जानते हैं जयदत्तजी को ?" कृपानिधान ने तीखी नजरों से घूरते हुए, लेकिन मीठी मुसकान के साथ मुझसे कहा, शायद वह मेरे मनोभावों को मापने का प्रयत्न कर रहा था।

"वह मेरे बचपन का सहपाठी और रिश्तेदार भी है।"

फिर वही उच्च अट्टहास। "बेचारे इतने परेशान थे कि दूर पहाड़ से आज यहीं आ गए हैं।"

"यहां आ गए हैं ? आज !"

"हां, हां, आप से रिश्तेदारी है, तो आप से मिलने भी आएंगे। हो सकता है, आते ही हों। आज ही आए और आज ही मैंने उनका काम करा दिया है। अब खुशखुश हलके मन से शाम की गाड़ी से लौट रहे हैं। किसी की परेशानी मुझे अपनी परेशानी मालूम होने लगती है। कर सबका भला, मैं तो सबसे यही कहता हूं। अच्छा, आज्ञा दीजिए। मैं चलूं। कुंडली आप जरूर भेज दें, मैं फिर आपसे मिलूंगा।'

कृपानिधान चला गया।

हड़बड़ी में जयदत्त आया है। काम आते ही बन गया है। आज ही जा रहा है। अजीब रहस्यमय नाटक नहीं तो क्या है यह सब ? मिलने जरूर आएगा जयदत्त। शाम को ही जा रहा है, तो हो सकता है, अभी आता ही हो। मकान उसका देखा है इसलिए ढूंढ़ने में कठिनाई नहीं होगी।

जासूसी उपन्यास पढ़ने में मगन मैं नायक के साथ करीब पंदरह मिनट तक एक डरावनी सुरंग में भटक कर बाहर निकल ही रहा था कि खुले दरवाजे से जयदत्त दिखाई दिया। उठ कर उसे भीतर लाया। पत्नी को चाय बनाने के लिए आवाज दी तो जयदत्त ने मना कर दिया, "मैं, बहुत जल्दी में हूं, बैठूंगा नहीं। कुछ सामान भी खरीदना है। आज ही चला जाऊंगा।"

मैंने पत्नी से कहा, "अरे, लेती आओ। एक कप चाय चल ही जाएगी।"

जयदत्त से पूछा, "तुम्हारा काम ठीक हो गया। शर्मा आया था अभी अभी। वही बता रहा था।"

"किसी शादी ब्याह के लिए आया होगा। बड़ा नीच है।"

"शादी के फेर में ही आया था।"

"इसके फंदे में न पड़ना।"

"तुम इसके भतीजे के चक्कर में कैसे पड़ गए?"

"नहीं, नहीं, वर बहुत अच्छा है। मैं मालूम कर चुका हूँ। इस कृपानिधान से उसकी पटती नहीं बिलकुल।"

"फिर यह कृपानिधान तुम्हारे बीच में कहाँ से आ गया?"

"मेरे ममेरे भाई गोपाल यही हैं, जानते तो हो?"

"हाँ, हाँ।"

"उसने सीधे वर के बाप से बात करके शादी ठहरवा दी। कृपा-निधान बौखला गया। इसका हिस्सा जो निकल गया।"

"फिर?"

पत्नी चाय लाई। जयदत्त के पैर छुए और चली गई।

"परसों एकाएक वर के बाप का बड़े गुस्से का एक पत्र मिला कि मैंने लड़की के बारे में उन्हें धोखा दिया है और वे जब तक सही-सही नहीं मालूम कर लेंगे, यह विवाह नहीं करेंगे। इसीलिए कल ही रवाना होकर आज यहाँ आया हूँ।"

"क्या धोखा दिया है, यह भी कुछ लिखा था," उसने पूछा।

"गोपाल से आज सब कुछ मालूम हो गया। सारी लगाई बुझाई इसी कृपानिधान की है। एकदम लकड़बग्घा है। दयामाया से शून्य, लेकिन कावरा साँप की तरह बाहर से बड़ा ही चिकना चुपड़ा। इसीलिए मैं सीधे उसी की माँद में पहुँचा।"

मैं जयदत्त को ताकता रह गया। वही पुराना विद्रोही स्वर।

वह कह रहा था, "मैंने कृपानिधान से सीधे सीधे सवाल किया, 'इस विवाह में अड़ंगा लगा कर क्या चाहते हो। साफ बोलो, इधर उधर घुमा कर कहने की जरूरत नहीं।' इस पर वह चौंक गया।"

मेरी नजर जयदत्त के चेहरे पर गड़ सी गई। अंगरेजों के खिलाफ लड़ता हुआ उसका तेजोमय रूप एक झपकी सी दे कर गायब हो गया। मानसिक थकान की लकीरें उसके माथे पर उभर आईं।

"बहुत उखड़ गया होगा कृपानिधान," मैंने पूछा,

"उखड़! तिलमिला कर अपने असली खूंखार रूप में आ गया। मोर्चा बांधता हुआ बोला कि आप मुझे डराना चाहते हैं। मेरे घर के लड़के से अपनी देहाती नातिन की शादी बिना ब्राह्मण की दक्षिणा दिए ही कर लेंगे आप, मेरे पीठ पीछे। बिना दक्षिणा दिए। नहीं होगा यह ब्याह। बोलिए अब? मेरे ऊपर रोब! ऊँह!"

"ओह, यह रूप भी है उसका?"

"उसका रूप!' मैंने कहा, 'बोलिए अपने दाम।' बोला, 'दाम नहीं दक्षिणा चार हजार। यह ब्राह्मण की जबान है। कोई हेरफेर नहीं होगा!' नातिन को छोड़ कर कोई है नहीं आपका। जमीन काफी है!

"तो कमीने की तुम्हारी जमीन पर नजर है। जमीन बेचने पर तुम्हारी बाकी जिंदगी कैसे गुजर होगी?" क्रोध की लहर मेरे शरीर में अनायास दौड़ गई।

"मैंने मंजूर कर लिया!"

"तुमने मंजूर लिया!" जयदत्त को हैरत से देखता रह गया।

"हाँ, पेशगी न होने से उसने अपने दो आदमियों के सामने मुझसे बचन लिया कि शादी होते ही मैं उसे वहीं चार हजार अर्पण करूँगा।"

"अब क्या करोगे?

"अर्पण करने का वचन दिया है। उसका पालन करूँगा।"

"तो आज ही जा रहे हो। दिन कौन सा तय हुआ?" मैंने भारी मन से बातों का रुख पलटा, जयदत्त की व्यथा मैं अनुभव कर रहा था।

"हाँ, अब चलूं! सामान भी खरीदते जाऊँगा। अगले हफ्ते इसी दिन तय हुआ…तुम्हारे पास इतनी जल्दी मैं इसलिए आया कि तुम्हें जरूर आना है। मेरा यह पहला और आखिरी सामाजिक कार्य है। तुम्हारे आने से अपनापन सा अनुभव होता रहेगा…बोलो, आओगे?"

"हाँ, जरूर आऊँगा…बरात के साथ ही आ जाऊँगा, उसी में सुविधा रहेगी।"

"ठीक है, मैं चलूं।"

जयदत्त चला गया। मेरा मन खिन्न हो रहा है। जिस व्यक्ति ने उतने बड़े साम्राज्य से सीना तान कर लोहा लिया, वह आज कृपानिधान शर्मा के सामने अपने आपको इतना कमजोर महसूस कर रहा है! लेकिन… लेकिन…मुझे जयदत्त के चेहरे पर कहीं भी पराजय की ग्लानि अंकित नहीं दिखाई दी है, क्या यह मेरा भ्रममात्र है? वह वचन दे चुका है और वचन से वह हटेगा, यह भी संभव नहीं है।

विवाह के समय कृपानिधान ही सबसे खुश नजर आ रहा है। बड़ों से बड़ी नम्रतापूर्वक बातें कर रहा है, बराबर वालों को हँसी मजाक, चुटकुलों से हँसाए चला जा रहा है, और छोटों को हासपरिहास से खुश करके उनमें भी प्रिय बनने की भरसक कोशिश कर रहा है।

विवाह संपन्न हुआ। बरात का सामान लारी पर लद चुका है। बराती लारी के पास इकट्ठे होने लगे हैं। जयदत्त का कहीं पता नहीं। कृपानिधान सबसे ज्यादा परेशान और चिंतित दिखाई दे रहा है। बार बार जयदत्त को बुला लेने और जल्दी चल निकलने की बात उठा रहा है, ताकि लारी ठीक समय पर चल कर आगे की रेल पकड़ ले।

जयदत्त आया। धीमे स्वर में कृपानिधान से अपने दो गवाहों के साथ एक ओर एकांत में चलने का आग्रह किया। मुझे भी आने का इशारा किया।

एक पेड़ के नीचे जयदत्त ने जेब से एक रूमाल निकाला और उसमें से चार सुन्दर खिले हुए फूल दोनों हाथों की अंजलि में लेकर कृपानिधान

की ओर बढ़ाते हुए कहा, "आप का कृपानिधान नाम उचित ही है। आप सचमुच कृपा के घर हैं। बताइए, इस विवाह में आपने इतनी कृपा की है और बदले में केवल 'चार हजार' (गेंदे के फूल की एक किस्म जिसे पहाड़ में हजारी भी कहते हैं) अर्पण करने को कहा! क्या कहूँ, आपने ब्राह्मण नाम को उजागर कर दिया है। आपके परम निर्लोभी व्यक्तित्व को प्रणाम कर, अपने वचन के अनुसार, ये 'चार हजार' आपको विनम्रता-पूर्वक अर्पण कर रहा हूँ। काफी दूर से लाना पड़ा है इन्हें, कृपया यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें।"

कृपानिधान को लगा जैसे चार दहकते अंगारे उसके हाथ में रख दिए गए हैं। क्रोध से कंपित स्वर में कुछ कुछ हकलाते हुए बोला, "वचन चार हजार रुपए का हुआ था। ये तो चार हज़ार के फूल हैं।"

"यह श्रवण दोष हो सकता है, कृपानिधानजी। मैंने हर बार चार हजार अर्पण करने का वचन दिया। आप तो पंडित हैं। बताइए, अर्पण फूल किए जाते हैं या रुपए, जो कि इस मायापुरी संसार में सारे झगड़े की जड़ है, और जिनसे ब्राह्मण को दूर रहने का शास्त्रों में विधान है।"

कृपानिधान ने दोनों गवाहों की ओर देखा। वे मुसकरा रहे थे।

कृपानिधान का चेहरा गुस्से से तमतमा उठा है, लेकिन कह या कर क्या सकता है। कमीशन की बात किसी और से कह भी नहीं सकता। जयदत्त ने अपने ढंग से अपने वचन का पालन कर उसका मुँह खुलने लायक नहीं रखा है। और बात बढ़ाने पर उसी की लेदे होगी, यह भी वह समझ रहा है।

जयदत्त बोला, "कृपानिधानजी, धन्यवाद। आपने बड़ी मदद की पंडित का काम ही परोपकार करना है। अब आप आनंदपूर्वक अपनी वापसी यात्रा प्रारंभ करने का कष्ट करें।"

मैं न चाहते हुए भी खिलखिला पड़ा। "वाह, वाह जयदत्त तुमने तो धर्मराज युधिष्ठिर को भी मात दे दी। वे बेचारे सैकड़ों की मदद से, वह

भी बड़ी मुश्किल से, अश्वत्थामा हाथी के नर होने का भ्रम पैदा कर पाए थे। यहाँ तो तुमने अकेले ही ब्रह्म राक्षस पर विजय पा ली, भाई, वाह...''

मुझे अपनी हँसी रोकनी कठिन हो रही है। कृपानिधान लाल लाल आँखों से मुझे घूरने लगा है।

लारी चल पड़ी है। कृपानिधान एक ओर गुस्से में भरा, सीधे सामने की ओर नजर गड़ाए, गुमसुम बैठा है।

प्राणों की बाजी

आखिर डा० प्रेमप्रकाश का सामना अपने जैसे से हो ही गया। आपरेशन टेबुल के पास खड़े डा० प्रेमप्रकाश ने हमेशा की तरह रोगी के साथ आए हुए व्यक्ति को बुलवाया। उनके मुँह का कपड़ा कुछ खुला था। दाहिने हाथ में चीराफाड़ी का चाकू था। रोगी मेज पर पड़ा था। वे उसका पेट चीर चुके थे।

एक लम्बे-चौड़े डील-डौल के पुरुष ने तेजी से आपरेशन थियेटर में प्रवेश किया। रंग काला, नाक मोटी तथा फैली हुई थी। मूछें घनी, लम्बी और नुकीली थीं। चेहरे पर चिन्ता और विकलता की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होने पर भी उसकी बड़ी-बड़ी लाल-लाल डोरे पड़ी हुई आँखें देखकर हृदय में आतंक-सा उत्पन्न होता था। डा० प्रेमप्रकाश ने बड़ी शान्ति से उसके कान में धीमे से कुछ कहा तो वह उन्हें कुछ क्षणों तक घूरता रहा। फिर एकाएक उसका चेहरा क्रोध से लाल हो उठा और आँखों से चिनगारियाँ-सी छूटने लगीं। उसके होंठ भिंच गए। वह तेजी से दाहिना हाथ कमीज के भीतर बगल की ओर ले गया और रिवाल्वर डा० प्रेमप्रकाश के सीने पर तान दिया। डा० प्रेमप्रकाश स्तब्ध रह गए। रोगी चीरा हुआ पड़ा हो और उसके सम्बन्धी सिर झुका कर थर-थर काँपने के बजाए कुछ और भी कर सकते हैं, यह वे कभी सोच भी न पाये थे।

डा० प्रेमप्रकाश का यश फैलना जब शुरू हुआ तो सब कोई, जो उन्हें

निकट से जानते थे, उनके गुणों पर मुग्ध हो गए थे। ऐसी लगन और निष्ठा उन्होंने बहुत कम आदमियों में देखी थी। उनसे वे बड़ी-बड़ी आशाएँ करने लगे। लेकिन डा० प्रेमप्रकाश के पैर जमने के कुछ ही समय बाद उन्हें उनके निर्मल जीवन को कलुषित करने वाली अफवाहें सुनाई देने लगीं, तो वे आश्चर्यचकित रह गए। वे जो कुछ सुनते रहे थे उस पर विश्वास करें या न करें, यही निर्णय करना उनके लिए मुश्किल हो गया। पहले अफवाहें कई स्थानों से छन-छन कर थोड़ा-थोड़ा करके आती रहीं। फिर धीरे-धीरे एक कान से दूसरे, दूसरे से तीसरे और होते-होते चारों ओर फैल गईं। जो सुनता आहत भाव से कह उठता—अन्धेर है भाई। इनसे ऐसी उम्मीद न थी। इतना बड़ा डाक्टर और ऐसे कर्म। इन्सान का डर न सही, भगवान का भी भय नहीं। आजकल किसी का एतबार नहीं। फिर ऊपर आकाश की ओर तर्जनी अंगुली उठाकर मानो अपने को ही आश्वस्त करता हुआ कहता—वहाँ देर भले ही हो, अन्धेर नहीं हो सकता। इनका भी कभी न कभी अपने जैसे से मुकाबला होगा। जिस किसी को उनके पास मौत के आतंक के कारण जाना ही पड़ता उसके भयभीत परन्तु प्रतिरोध के लिए लालायित हृदय में एक ही प्रार्थना रहती—हे ईश्वर! कोई हमारा इनसे बदला ले ले। अपनी ही तरह के आदमी से किसी दिन इनका भी पाला पड़ जाए।

और आज पहली बार डा० प्रेमप्रकाश का सामना अपने जैसे क्रूर व्यक्ति से हो ही गया।

डा० प्रेमप्रकाश का जन्म एक अत्यन्त गरीब घराने में हुआ था। पिता करुणानन्द को पूजापाठ कराकर जो कुछ मिलता उससे सात प्राणियों की गुजर-बसर होती। माँ सीधी-साधी थीं। दरिद्रता के कारण असमय ही उनमें बुढ़ापा आ गया था। चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं। बाल सफेद हो गये थे। पिता का स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया था और सभी पर झुँझलाते रहते थे।

प्रेमप्रकाश पढ़ने में बहुत तेज था। पर फीस, किताब, कापियाँ बड़ी

मुश्किल से जुट पातीं। बड़े भाइयों ने पढ़ना छोड़ दिया। वे सारे दिन मटरगश्ती करते और सुबह-शाम खाना खाने घर पर आ जाते। करुणानन्द कभी उनसे सुधरने की अनुनय-विनय करते और कभी क्रुध होकर उन पर बरस पड़ते। सारे घर में कुहराम मचता रहता। प्रेमप्रकाश डरा हुआ यह सब देखता रहता।

बड़ी बहन कलावती घर के काम में होशियार थी। लेकिन बहुत ही सीधी और भोली थी। रंग सांवला था। करुणानन्द की बदहवास दौड़-धूप के बाद उसके लिए वर मिला एक शराबी और बदचलन। उन्होंने विवश स्वर में यही कह कर परिवार को संतोष दिया—पुरुष का दोष नहीं देखा जाता। लड़की में गुण हैं तो उसे राह पर ले आयेगी।

प्रेमप्रकाश रात को सोने जा रहा था, तो उसने पिता को भरे गले से माँ से कहते सुना—क्या करें प्रेमप्रकाश की माँ, रुपया होता तो हमारी लड़की भी पढ़ती-लिखती और इस समय हमें भी एक से एक अच्छा वर मिलता। खाली कुलीनता को आजकल कौन पूछता है?

उसकी बहन की जहाँ शादी ठहरी है उससे उसके पिता दुःखी हैं, इतना वह समझ गया। लेकिन तब वह यह न समझ पाया कि उसकी बहन को अच्छा वर मिलने के लिए पिता रुपये की बात क्यों कर रहे थे। हाँ, इतना स्पष्ट था कि बारातों के साथ आने वाले वर तभी अच्छे मिलते हैं जब रुपया होता है।

करुणानन्द ने लडकी को विदा करते समय आशीश दी—बेटी तू जहाँ जा रही है वहीं अब तेरा घर है। भला हो, या बुरा तुझे अब वहीं निभाना है.........बस एक बात का ध्यान रखना बेटी, कुल को बट्टा न लगने देना।

पर दो साल बीतते न बीतते उनका दामाद उसे लांछन लगाकर वापस पहुँचा गया तो करुणानन्द काँप उठे, क्रोध से नहीं, भय से। उसकी गोद में बच्चा भी था। सारा जेवर पति की शराब की भेंट चढ़ चुका था। करुणानन्द गिड़गिड़ए ही नहीं, उन्होंने दामाद के पैरों पर अपनी टोपी भी

रख दी। उसने रुपया माँगा। न मिलने पर पैर पटकता हुआ चल दिया। प्रेमप्रकाश ने यह सब देखा और उसके बाल-हृदय में क्रोध का ऐसा उबाल उठा कि वह उस दामाद कहे जाने वाले आदमी पर टूट पड़ना चाहता था। इसके बाद सबके ऊपर एक विचित्र मनहूसी छा गई। करुणानन्द का सिर उठाकर चलना असम्भव हो गया।

प्रेम प्रकाश अपनी बहन को घुलते और उसकी पीड़ा का अनुभव भी करता। पर जहाँ उसके माँ, बाप, बड़े भाई सहायक थे, वहाँ वह क्या कर सकता था। इस विवशता ने उसमें क्रोध और क्षोभ भर दिया। साल भर बाद ही उसकी बहन अपने बच्चे को लेकर इस संसार से विदा हो गई, तो प्रेम प्रकाश कोमल हृदय सभी से बदला लेने के लिए तड़प उठा।

करुणानन्द की दूसरी लड़की पुष्पा देखने में बड़ी सुन्दर थी। स्त्रियाँ तक मुग्ध दृष्टि से उसे देखती रह जातीं, मानो वह कोई खिला हुआ गुलाब का फूल हो। उसके लिए बिना किसी दौड़ धूप के, बिना कुछ कहे सुने ही दो-तीन सम्पन्न विधुरों के घरानों से खुद ही संदेश आए, तो करुणा नन्द ने अपने भाग्य को सराहा। दौड़कर पत्नी से बोले—भला बताओ उनकी और अपनी कौन बराबरी है। यह सब परमात्मा की दया है, प्रकाश की माँ। वह परीक्षा जरूर लेता है, पर सब ओर से कभी नहीं मारता। लड़की कम से कम खाने, पीने, पहनने को तो न तरसेगी।

जिन्हें चुना गया वे पैंतालीस वर्ष के थे। पहली पत्नी से कोई सन्तान नहीं थी। वे व्यवसाय करते जिससे काफी रुपया कमा चुके थे। पुष्पा को अब बहुत रुपया मिलेगा और वह आराम से रहेगी, यह सुनकर प्रेम प्रकाश खुशी से नाच उठा।

पुष्पा का ससुराल प्रेम प्रकाश को परीलोक-सा लगा। सीमेन्ट के रंग-बिरंगे फर्श, उन पर बिछी हुई कालीनें, एक से एक नमूने के सोफासेट और पर्दे, उसने इससे पहले नहीं देखे थे। उन कालिनों पर चलते या बैठते हुए यही डर लगता था कि कहीं वे कुचले न जाएँ। वहाँ के दूसरे बच्चे बिना हिचक के उन पर उछलते-कूदते, तो वह देखता रह जाता।

वे बच्चे उसे अपने साथ खेलने के लिए नहीं बुलाते थे। वह सहमा हुआ उन्हें दूर से देखा करता। उनकी दृष्टियों में तिरस्कार का भाव उसका बाल मन अच्छी तरह पढ़ लेता। केवल एक बार उसने उनसे मिलने की हिम्मत की तभी पुष्पा के जेठानी के लड़के ने सबके सामने ही नाक-भौं सिकोड़ते हुए उससे कह दिया—इन कपड़ों और जूतों से कहीं खेला जाता है।

फिर और बच्चों की ओर मुड़कर बोला—इसके बाप बड़े गरीब हैं। वे कहाँ से खरीदेंगे इसके लिए कपड़े।

उसके आँसू देख पुष्पा भी रो पड़ी थी, और कुछ कह सकने की स्थिति में वह न थी। सन्तान न होने से पति उसकी ओर से निराश हो चुके थे। सामने मीठी बातें जरूर करते पर अब तक वह जान चुकी थी कि व बाहर एक औरत रखे हुए हैं और वहाँ जाकर शराब भी पीते हैं। नशे की मौज में एक दिन उन्होंने भी उसको सब बातें बताईं थीं। उसके बाप, बड़े भाइयों, यहाँ तक कि बालक प्रेम प्रकाश से भी वे दूर रहते थे। कभी आमना-सामना हो भी गया तो या तो खिचे ही रहते या बड़े रूखे ढंग से दो-चार बातें कर पीछा छुड़ा लेते। लेकिन उसकी जेठानी, देवरानी के पिता-भाई आते तो वे भी औरों के साथ आगवानी के लिए दौड़ पड़ते। पुष्पा यह देखती तो उसका चेहरा पीला पड़ जाता। वह खुद अपने बाप-भाइयों के आदर-सत्कार में लग जाती। लेकिन भीतर-ही-भीतर दम घुटता रहता।

पुष्पा की अब एक ही कामना रह गई। उसने दो एक बार प्रेमप्रकाश के सामने अपनी यह इच्छा प्रकट भी की—प्रकाश, गरीबी से बड़ा पाप दूसरा नहीं। तू पढ़-लिख कर बड़ा बन और जैसे भी हो रुपया जमा करना। तभी हमारी गरीबी का कलंक जाएगा। पता नहीं उसकी वाणी में ही इतनी गहन व्यथा थी या उसके हृदय के अन्तस्तल से उठता हुआ आर्तनाद इतना मुखर हो उठा कि उसने प्रेम प्रकाश के बाल-हृदय को भी छू लिया। उससे अपने को स्कूल, कालेज और पुस्तकों तक ही सीमित कर दिया।

बाहर कहाँ क्या हो रहा है, लोग क्या कह-सुन रहे हैं, किसको क्या सुख-दुःख है, इन सबसे उसको कोई सरोकार नहीं रहा।

प्रेम प्रकाश फर्स्ट आया तो सबसे ज्यादा खुश पुष्पा हुई। वह इतना ही चाहती थी कि उसका कोई भाई स्वयं उठकर उसके ससुराल वालों की बराबरी करने लायक हो जाए। प्रेम प्रकाश से ही यह आशा रखती। वह डाक्टर बनना चाहता था। लेकिन रुपये का प्रश्न दोनों के सामने था। बड़े भाइयों में एक अब ड्राइवर हो गया, दूसरे ने पान की दूकान खोल ली थी। कहीं से कोई आशा नहीं थी। आखिर पुष्पा से न रहा गया। अपना निरादर, उपेक्षा, अवहेलना सब कुछ भूलकर उसने पति से याचना कर दी—मेरे भाई के आगे पढ़ने में आप कुछ मदद दें।

उसके चेहरे पर असीम पीड़ा की छाप उभर आई थी। आँखों में आँसू भरे थे। मनुष्य क्या, पत्थर भी शायद पसीज जाता उसे देखकर। उसके पति अनमने भाव से राजी हो गए।

प्रतिभा थी ही। भाग्य ने साथ दिया। सर्जन के रूप में प्रसिद्धि पाने में डा० प्रकाश को देर न लगी। उन्हें सब कुछ मिला, लेकिन शान्ति नहीं मिली। हृदय और मन दोनों पर एक अव्यक्त भय छाया रहता। उनका अन्तर हर समय आशंकित बना रहता। कभी संयोग से दो-तीन दिन तक आपरेशन के बड़े केस न आते तो वे घबड़ा उठते। कहीं फिर कुछ न हो जाए, ऐसी एक भावना उन्हें अनजाने ही आतंकित किए रहती। उन्हें प्रतीत होता मानो वे पहाड़ के तले से चढ़ते-चढ़ते उसकी ऐसी चोटी पर पहुँच गए हैं जिस पर पहुँचने की उन्होंने कभी आशा नहीं की थी, लेकिन उससे जरा-सा भी पैर फिसलने से वे उसके तले पर गिर कर चूर-चूर हो जाएँगे।

इस भय का एक ही इलाज उन्हें सूझ पाता था। जल्द से जल्द इतना रुपया कमा लें कि धन का अभाव कभी होने ही न पाए। उन्होंने सख्ती से अधिक से अधिक पैसा वसूल करना शुरू कर दिया।

धनी रोगियों से रुपया ऐंठने में उन्हें विचित्र आनन्द आता था। पता नहीं क्यों उन्हें पुष्पा के ससुराल वालों के चेहरे झलकते नजर आते। हाँ,

फीस मिल जाने पर वे रोगी को बचाने की जी तोड़ कोशिश करते। फीस में किसी ने गड़बड़ी की नहीं कि वे बड़े बेरहम बन जाते। फिर मरे या जिए, उसकी उन्हें परवाह न रहती।

गरीब रोगियों को वे अपने पास फटकने भी न देते। सिर्फ पुष्पा की सिफारिश लेकर जो रोगी आ जाता उसको वे लौटा न पाते। इससे नुक्सान जरूर होता पर चूंकि पुष्पा को तसल्ली मिलनी थी इसलिए उन्हें भी बुर न लगता। पुष्पा के कारण ही उनका मनुष्यत्व गंभीर रूप से घायल होने पर भी अभी सांस ले रहा था। उसने भी साथ छोड़ दिया। वह भीतर ही भीतर बिल्कुल घुल चुकी थी। केवल आँखों में उसकी चमक बची थी। तीन दिन की बीमारी में ही पुष्पा चल बसी। किसी को कुछ करने का मौका न दिया उसने।

डा० प्रेम प्रकाश के इलाज में भी अब एक विचित्रता आ गई। आप-रेशन करने के बाद ही उन्हें रोगी में कई और ऐसे जटिल रोग मिल जाते जिनके आपरेशन के लिए उन्हें रोगी के सम्बन्धी या साथी को बुलाकर दुगुनी या तिगुनी फीस की माँग करनी पड़ती। उस सम्बन्धी या साथी का चेहरा एक क्षण के लिए क्रोध से तमतमा उठता, पर आपरेशन टेबुल पर पड़े रोगी को देख कर काँपता हुआ वह राजी हो जाता। डा० प्रेम प्रकाश यह सब देखते, परन्तु उनके चेहरे पर कहीं भी एक सिकन तक न उभरने पाती। वे एक मशीन बन चुके थे और उसी तरह बिना किसी भावना के अपना काम करते थे।

डा० प्रेम प्रकाश के सीने पर रिवाल्वर ताना हुआ व्यक्ति दाँत पीसते हुए कह रहा था—पहले आपने चार हजार नहीं, बारह हजार माँगे होते तो मैं दे देता। अब लड़के पर चाकू लगा चुकने पर आठ हजार मांगते हैं। जानते हैं, मैं कौन हूं। नत्थूसिंह का नाम सुना होगा आपने। मैं उन्हीं का आदमी हूं।

नत्थूसिंह का नाम सुनते ही डा० प्रेम प्रकाश सिर से पाँव तक कांप उठे। इस खूंखार डाकू का नाम रोज ही अखबारों में छपता था। हजारों का इनाम उसे पकड़ने के लिए घोषित हो चुका था।

उस आदमी का चेहरा देखते ही देखते और भी स्याह पड़ गया। डा० प्रेम प्रकाश को ऐसा प्रतीत हुआ मानो काल ही खूँखार आँखों से उन्हें घूर रहा है। उस आदमी की आवाज असाधारण रूप से गंभीर हो गई—हम डाकू हैं। अपढ़ हैं। जाहिल हैं। पेट पूरा नहीं भरा तो भीख नहीं माँगी, डाके डालना सीख लिया।······आप शरीफ हैं, इतने पढ़े-लिखें हैं। बड़ा नाम है आपका······। लेकिन आप रोगी से इस तरह रुपया ऐंठ रहे हैं। यह शराफत की आड़ में डाका नहीं है···आप कानून से बचना जानते हैं। इसलिए······।

एकाएक उस डरावने आदमी को रोगी का ध्यान आ गया। वात्सल्य, भय और आशंका की एक छाया उसके क्रूर चेहरे पर उभर कर लोप हो गई। अबकी वह गरज कर बोला—हाथ रोके क्या खड़े हो।

फिर बाएँ हाथ से रोगी की ओर इशारा करके बोला—इसे अगर कुछ हुआ तो तुम्हें मैं खत्म कर दूँगा। पुलिस बाद में आएगी, तुम यहाँ खत्म हो जाओगे। मैं न रहूँ, तो मेरे दूसरे साथी तुम्हें न छोड़ेंगे।

डा० प्रेम प्रकाश जड़वत खड़े थे। उनकी चेतना लौट आई। डाकू के रूप में मौत सामने खड़ी थी। आज उनके ही प्राणों की बाजी लग गई थी। डाकू जो कह रहा है, वही कर गुजरेगा इसमें शककी कोई गुंजाइश नहीं थी। वे आपरेशन में जुट गए।

मोहिनी

सामने सड़क पर माँ को दो स्त्रियों के साथ आते देखा तो जटाशङ्कर को सहसा अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। यह इस शहर में कब आयी। गौर से देखा तो उसका माथा ठनका। बड़ी वाली स्त्री दूर की रिश्ते की मौसी ही थी, जिनके यहाँ साल भर पहले वह खाना खाने जाया करता था, लेकिन जब उन्होंने ज़िद पकड़ ली कि वह इस मकान को छोड़ दे तो उसने उनके यहाँ जाना बन्द कर दिया था। आज वही मौसी माँ को लेकर आयी है। माँ अचानक गाँव से आ कैसे गयी। किसके साथ आयी, क्यों आयी ? इन्हीं मौसी ने तो कहीं पत्र भेजकर कोई बात लगाई-बुझाई न हो। अब ब्याह कर लेने और मकान छोड़ देने का जोरों से हठ होगा।

उस पर इतना अविश्वास क्यों है इन सबका। रहने को कहीं छप्पर तक न मिला तो वह यहाँ आ गया। इस मकान में एक अधेड़ औरत अकेली चक्की चलाकर पेट पालती है तो क्या पाप करती है। वह उसे खा तो नहीं रही है। खाना बना देती है तो वह उसे उसके पैसे देता है। मकान का किराया देता है।

मौसी के पीछे माँ सीढ़ी चढ़ गयी तो जटाशङ्कर ने अकड़ कर खड़े होते हुये अपनी लम्बी जटाओं पर दाहिना हाथ फेरा और फिर आगे बढ़ कर माँ और मौसी के पैर छुये। मौसी के पीछे खड़ी उनकी देवरानी के हाथ जोड़े।

माँ से पूछा, "तू आज अचानक कैसे आ गयी। पहले से पत्र भी न भेजा तूने।"

"सदाशिव आ रहा था यहाँ, मैं भी चली आयी। अगले शुक्र को तेरे बाबूजी भी आयेंगे।"

"बाबूजी आयेंगे!" जटाशङ्कर को सारे बदन में कंपकंपी-सी मालूम दी—"क्यों?"

"वे तेरे लिये कोई और मकान ढूँढेंगे।"

"मेरे लिये मकान ढूँढ़ेगे! क्यों?"

"यहाँ रहकर तू कितनी बदनामी करा रहा है। नहीं जानता तू।"

"बदनामी! कैसी बदनामी! कौन कर रहा है बदनाम?" जटाशङ्कर ने टेढ़ी नजर से मौसी की ओर देखा।

"तू एक चक्की वाली के साथ अकेले रहता है। इसमें बदनामी नहीं है क्या?"

"वह एक चक्की चलाती है तो इसमें पाप क्या है। पेट के लिए कोई न कोई धन्धा तो करना ही पड़ता है। मैं कहीं और जगह न मिलने से यहाँ आया हूँ, तो इसमें बुराई क्या है। मैं खुद आया भी नहीं। सत्यानन्द यहाँ से गया, तो मुझे रख गया।"

"उसी दुष्ट ने तो न जाने किस जन्म का बदला हमसे लिया है।"

माँ को गुस्से में होंठ चबाते देख, जटाशङ्कर को आश्चर्य हुआ।

"सत्यानन्द पर इतनी नाराज क्यों है। पहले तो तू उसकी तारीफ करती थी। उसकी तो कोई बदनामी नहीं हुई।"

"देख बेटा, उसकी बात तू बाद में खुद ही सुन लेगा।" अबकी मौसी रहस्यपूर्ण स्वर में बोली, "तू कब तक कुँवारा बना रहेगा। रुपये वाला घर न सही, अपनी ही हैसियत की अच्छी से अच्छी लड़की तेरे लिये मिल जायेगी।"

"ब्याह कर लूँ मौसी तो घर को खर्च कैसे भेज सकूँगा।"

"हमें खर्च भेजने से ही तू ब्याह नहीं करेगा। माँ तीव्र उलाहने के

स्वर में बोली, "और लोग क्या ब्याह करके अपने घर को भूल जाते हैं ।"

"मैं बिना ब्याह के ही रह जाऊँ तो इसमें क्या हर्ज है । छोटा भाई अब बड़ा हो रहा है । उसी का ब्याह कर दो ।"

"उस चुड़ैल ने ही तुझ पर जादू कर दिया है ।" माँ की आँखों की कोरें सजल हो गयीं । आँचल आँखों पर फेरकर उन्होंने उसके कोने की गाँठ में बँधी पुड़िया से गुड़ का टुकड़ा निकाल कर कहा, "गाँव में पंडित जी ने मन्तर करके इसे दिया है, इसे खाले । चुड़ैल का टोना खत्म हो जायेगा ।"

माँ ने हाथ आगे बढ़ाया तो जटाशङ्कर बिफर उठा, "क्या पागल हो गयी है तू । मैं नहीं खाऊँगा यह गुड़, मैं नहीं करूँगा शादी । इस माया-जाल में मैं नहीं फसूँगा । तू जा, और रुपया चाहिए तो लिख देना ।"

माँ गिड़गिड़ा कर बोली, "गुस्सा न कर बेटा । इस चुड़ैल ने तुझे उल्लू का माँस खिला दिया है । यह गुड़ खा ले, तेरी मति ठीक हो जायेगी ।"

"खा लो बेटा ।" मौसी ने साथ दिया ।

"तुमको और कोई बात नहीं करनी है, तो मैं ही यहाँ से चला जाऊँ ।" जटाशङ्कर की आँखें लाल हो गयीं और दाढ़ी काँपती हुई प्रतीत हुई, 'तुम लोगों ने मुझे क्या बच्चा समझ लिया है ।"

जटाशङ्कर अपने को झटका-सा देकर दाहिना हाथ दाढ़ी और सिर पर फेरते हुये उठ खड़ा हुआ । माँ, मौसी और उनकी देवरानी भी उठ खड़ी हुईं ।

"बेटा, खा लेता तो अच्छा ही था । तुझी को समझ आ जाती । अगले शुक्र को तेरे बाबूजी भी आयेंगे । उनका स्वभाव तू जानता ही है ।"

मौसी माँ का हाथ पकड़कर चलते हुये बोलीं, "उस चुड़ैल ने अपना नाम भी मोहिनी रखा है । वह ऐसे ही नहीं छोड़ेगी ।"

जटाशंकर स्तब्ध होकर कुछ देर तक माँ, मौसी और उनकी देवरानी को जाते देखता रहा और वहीं बेदम सा होकर तख्त पर बैठ गया । जब

उसने मायाजाल में फँसना चाहा तो उसका कितना तिरस्कार किया गया, जगह-जगह से यही सुनने को मिलता, "अपने खाने का ठिकाना नहीं, पराई आत्मा को भी भूखा मारना चाहते हैं।" सालम गाँव की हरिप्रिया उसे पसन्द आयी तो 'यह मुंह और मसूर की दाल कहकर उसका और उसके परिवार का कितना मखौल उड़ाया गया। यही माँ कितना रोयी थी, यह सब सुनकर। उसका कसूर इतना ही था कि उसके माँ-बाप गरीब थे। अब एक मामूली-सी नौकरी वह पा सका है।

इस समय वह मुक्त है। न किसी को उससे लेना-देना है न किसी से उसको। सुबह-शाम पूजा-पाठ कर लिया, दिन में दफ्तर चला गया। शाम को खा-पीकर जो चाहा तो वहीं विद्वानों के प्रवचन सुन लिया या भजन-कीर्तन से भाग लेने चला गया, न चाहा तो आराम से लेटे-लेटे तत्व ज्ञान की पुस्तकों के अध्ययन में रम गया, कितनी आज़ादी है, बन्धनमुक्त रहने का कितना सन्तोष है। वह ब्रह्मचर्य धारण करके, साधना में रहकर, आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने की कोशिश कर ही रहा है। यह शक्ति आ गयी तो इसी से वह गाँव वालों को चकाचौंध कर देगा। नहीं तो स्वतन्त्र जीवन का जो आनन्द है, उसी को क्यों न प्राप्त करता रहे।

जटाशङ्कर को याद आया कि उसे अभी-अभी एक गोष्ठी में शामिल होना है। जल्दी से उठकर भीतर जाने लगा तो मोहिनी की एकटक दृष्टि अपने ऊपर गढ़ी देख कुछ परेशान हो उठा। वह कुछ कहे, इसके पहले ही वह उसके पैरों पर गिर पड़ी। उसकी सिसकियाँ बन्द ही नहीं होती थीं।

जटाशङ्कर पीछे हटकर कुछ विरक्त स्वर में बोला, "मालूम पड़ता है तुमने सब बातें सुन लीं। तुम अपना काम किये जाओ। परेशान होने की कोई बात नहीं है।"

मोहिनी सँभल कर बैठ गयी, लेकिन आँखें अभी भी सजल थीं, "बाबू, इतने दिनों से आप यहाँ हैं। मैंने कभी भी आप पर बुरी नजर डाली हो, तो मेरी आँखें फूट जायँ। मेरी जैसी अभागन को तो मर जाना चाहिये। इस दुनिया में मेरे लिए रखा ही क्या है। परलोक का

डर जहर भी नहीं खाने देता···" सिसकियों के बीच वह आगे न बोल पायी।

जटाशंकर द्रवित किन्तु दृढ़ स्वर में बोला, "अपना अन्तर शुद्ध रहना चाहिये। कहने वाले जो कहें, उसकी परवाह नहीं करनी चाहिये।"

"बाबू, मैं तो मूरख हूँ। आप वेद-शास्त्र, पुराण सब पढ़े हैं। दो अक्षर मुझे भी सुना दिया करें। यह लोक तो जो होना था हो गया। परलोक ही कुछ सुधर जायेगा।"

"अच्छा, जब मैं पाठ करता हूँ, तब तुम भी आकर सुन लेना।··· अब मैं चलूँ···।"

"आपका रोज का चाय का वक्त हो गया है। पानी उबल रहा है। मैं दौड़कर लाती हूँ।"

"आज पी लेता हूँ। आगे से सिर्फ सात्विक भोजन और फलाहार ही करूँगा।"

मोहिनी को तेजी से जाते देख जटाशंकर को उसके स्वस्थ सुगठित शरीर का आज पहली बार भान हुआ। इसके पहले वह अपने ही पाठ-पूजा-अध्ययन में लगा रहता था और वह समय देखकर चाय, खाना रख जाया करती थी। बातचीत का भी बहुत कम मौका आता था। खाने और मकान के किराये की बँधी रकम वह देता है। वह इतने में ही सन्तुष्ट है। लेकिन लोग अपने मन का कलुष इस पर भी उड़ेलने से बाज नहीं आये। उनकी दृष्टि बाह्य काया तक सीमित रहती है। वे उसके भीतर आत्मा का प्रकाश कैसे देख पायेंगे।

मोहिनी चाय ले आयी। जटाशंकर उसे जल्दी से गुटक कर जाने लगा तो मोहिनी ने आवाज दी, "बाबूजी, जाड़ा ज्यादा है। गरम बनियान तो पहन लो।"

"नहीं, अब धीरे-धीरे वस्त्र और भोजन त्याग कर शरीर को साधने का विचार है।"

जटाशंकर शाम को लौटकर आया तो अपने कमरे की कायापलट

देख उसे आश्चर्य भी हुआ, हर्ष भी। खास कर पूजा की जगह को साफ-सुथरी बनाकर सभी पुस्तकें-चित्र आदि बड़े व्यवस्थित ढङ्ग से लगा दिये गये थे। पूजा के लिये ताजे फूल भी एक छोटी-सी टोकरी में रखे थे। सारा कमरा महक रहा था। धूप की वत्तियाँ चारों कोनों पर जल रही थीं।

पूजा के लिए जटाशंकर बैठा तो मोहिनी भी साफ धोती पहनकर आ बैठी। उसके चेहरे का पवित्र भाव जटाशंकर को बहुत रुचा। उच्च स्वर में पाठ करते समय वह रोज ही की तरह वाह्य जगत को पूर्णतया भूल कर आत्म-विभोर हो गया। पाठ समाप्त होते ही मोहिनी पर नजर पड़ने पर उसका ख्याल आया। वह निर्निमेष दृष्टि से उसी को देख रही थी। चेहरे पर वही पवित्र भाव था, लेकिन आँखों में उसे एक अजीव चमक-सी दिखायी दी, कुछ-कुछ रात में बिल्ली की आँखों जैसी। उसे विस्मय हुआ, लेकिन तत्काल ही इस समानता पर वह मन ही मन मुस्कराया। प्रताड़ित मानव के सद्प्रयास का भाव उसके चेहरे पर अंकित होना स्वाभाविक है। लेकिन उसके अन्तर में संचित दुख-कष्ट की छवि उसकी आँखों में न चमकेगी तो क्या होगा।

जटाशंकर को खाना भी वड़ा स्वादिष्ट लगा। रात को मोहिनी दूध देने आयी तो दूध देते समय आँचल का किनारा उसके मुंह से छू गया। सुखद अनुभूति से एक क्षण के लिए उसकी आँखें मुंद गयीं। तभी वह एक झटका-सा लगने से सजग हो गया। यह क्या ? कैसी अनुभूति हुई यह ? तीव्र ग्लानि हृदय को कचोटने ही लगी थी कि उसे मन में चारों ओर प्रकाश की किरणें फूटती हुई मालूम दीं। हाड़-मांस का बना यह शरीर तो अपना काम करेगा ही। उसमें सुई चुभते ही क्या अनायास ही दर्द नहीं होगा ! ठंडी या गर्म हवा लगने से जाड़ा या गर्मी लगेगी कि नहीं। तो नारी का आँचल छूते ही बाह्य शरीर पर उसकी प्रतिक्रिया हुई तो इसमें परेशानी की क्या बात है। अनुभूति हुई और खत्म हो गयी। बस ! अन्तर पर तो उनका ही नियन्त्रण रहा। इसी तरह तो एक-एक कदम आगे बढ़कर वह इन्द्रियों पर पूर्ण विजय प्राप्त कर सकेगा।

चारपाई पर लेटते ही उसे माँ की कही बात याद आ गयी। "अगले शुक्र को तेरे बाबूजी आयेंगे।" उल्लास चिन्ता में बदल गया। पिता की वह इज्जत करता है। लेकिन वे उसे किसी ऐसी बात के लिए बाध्य करें जिसे वह नहीं चाहता, यह कहाँ तक उचित है। पर उचित-अनुचित का उनका अपना जो मापदंड है, उसी को मानने के लिए वे उसे मजबूर करना चाहेंगे। न मानने पर वे जो कांड न कर दें, सो कम है। तेज स्वभाव तो उनका है ही, गरीबी ने बेहद चिडचिड़ा भी बना दिया है। जो भी हो, अभी किया ही क्या जा सकता है। देखूँ, भगवान को क्या मंजूर है।

सुबह जटाशंकर उठा तो उसे लगा उसका शरीर फूल-सा हल्का हो गया है। ऐसी मीठी नींद उसे वर्षों बाद आयी है। लेकिन माँ की बात याद आते ही मन पर फिर बोझ सा आ बैठा। वह उठा और रोज की तरह नहा-धोकर पूजा-गृह में बैठ गया। लेकिन पाठ में वह अपना मन नित्यप्रति की तरह पूर्णतया केन्द्रित नहीं कर पाया। किसी तरह उसे समाप्त करके चारपाई पर बैठा ही था कि मोहिनी चाय लेकर आ गयी, "बाबू आज जल्दी पूजा कर ली। यह चाय पी लीजिए।"

जटाशंकर ने मनादी करने के लिए हाथ उठाया, तो उसके स्वर में कल की जैसी दृढ़ता न थी, "मैंने कल कहा था कि मैं चाय छोड़ रहा हूँ।"

"बाबू, एकदम दोनों समय की चाय न छोड़ो। सुबह ले लो। नहीं तो दफ्तर में सिर भारी रहेगा, काम में परेशानी होगी। आदत छोड़ते कुछ वक्त लगता ही है।"

जटाशंकर ने चाय ले ली। वह बचपन से चाय का आदी है। इस लिए उसे मोहिनी का कहना युक्तिसंगत लगा! मोहिनी चली गयी। जटाशंकर को माँ और मौसी की बातों पर दुख हुआ। क्या-क्या नहीं कह गयीं वे इससे आकर? वह बोल नहीं सकती थी क्योंकि अपनी हीन स्थिति को वह जानती है। दफ्तर के अफसरों और समाज के खाते-पीते अच्छी

स्थिति के लोगों के सामने क्या वह अपने को इसी की तरह ही अनुभव नहीं करता है, या करने को मजबूर नहीं है। इसे चक्की वाली जानकर माँ और मौसी ने इससे घृणा तो की, लेकिन इसके भीतर का देवत्व यानी मातृ-स्नेह उन्होंने नहीं देखा जो हर नारी में, किसी में प्रच्छन्न तो किसी में प्रकट, रहता ही है। उसके प्रति वासना यानी अस्थि-चर्म के प्रति आसक्ति। ओफ, मेरे मुकाबले उसकी उम्र कितनी है, यह भी न देखा उन लोगों ने। कितना अधिक मनोविकार है उनमें।

शाम को दफ़्तर से ही वह एक प्रसिद्ध कथावाचक का रामायण पर प्रवचन सुनने एक करोड़पति सेठजी की सभी आधुनिक साधनों से सुसज्जित विशालकाय कोठी पर चला गया। प्रवचन के समय कोठी के प्रांगण में सभी को प्रवेश करने की अनुमति थी। पंडित जी ने रायायण के एक-एक शब्द की जितनी और जैसी-जैसी व्याख्या की उसको सुनकर जटाशंकर चकित रह गया। क्या तुलसी को स्वयं अपने एक-एक शब्द की इतनी बारीकियों का ध्यान रहा होगा। यह विचार जटाशंकर के मन में एक बार उठा, लेकिन उसने तत्काल ही प्रयास करके उसे दिमाग से हटा दिया।

घूमते हुए वह घर को लौटा तो उसका मन काफी शान्त हो चुका था। माँ की बातों से वह बेकार ही इतना चिन्तित हुआ। पिता जी को इतनी छोटी तनख्वाह पर शहर में मकान मिलेगा ही कहाँ। ब्याह की बात वह मकान मिलने पर सोचने को कहकर टाल देगा। तब ये सारी बातें आयी-गयी हो जायेंगी।

पाठ करके खाना खाकर जटाशंकर सोने के लिए बिस्तर पर बैठा तो धूप की भीनी-भीनी सुगन्ध सीधे आत्मा में प्रवेश कर उसे उल्लसित करती हुई प्रतीत हुई। सामने मेज पर गुलदस्ते में रखे हुए गुलाब को वह कुछ देर तक देखता रहा। पूर्ण विकसित रूप में कितना अलौकिक सौन्दर्य है इस पुष्प का। लेकिन सौन्दर्य है क्या, उसने सोचा। वह इसे छू दे तो पंखुड़ियाँ बिखर जायेंगी और इस पुष्प का सौन्दर्य समाप्त हो जायेगा।

इसका मतलब हुआ कि किसी सुन्दर वस्तु के ऐन्द्रिक स्पर्श में वास्तविक आनन्द नहीं है। वह तो केवल दृश्यावलोकन से होने वाली आत्मानुभूति है।···तो क्या नारी के सौन्दर्य पर भी यही बात लागू नहीं होती, जिसके पीछे साधारणजन आत्म-विस्तृत होकर पशुत्व के स्तर पर उतर आते हैं। वह छूने पर क्या है ? हाड़-मांस का एक पिंडमात्र। मोहिनी सम्भवतः इन सब प्रपंचों के ऊपर उठना चाहती है। तभी तो उसने कमरे का वातावरण कितना सात्विक बना दिया है।

मोहिनी दूध लाकर जटाशंकर को देने लगी तो अचानक उसका ध्यान कोने में किसी चीज़ की ओर चला गया। दूध का गिलास टेढ़ा होकर दूध गिरने को ही था कि जटाशंकर ने मोहिनी के हाथ को गिलास के ऊपर दबाकर उसे सीधा कर दिया। दूध गिरने से बच गया। लेकिन यह क्या ? सारा शरीर रोमांचित हो गया और हृदय की धड़कनें तेज़ हो गयीं। मोहिनी जाने लगी तो आज उसका चलना, उसके अंग-प्रत्यंग की लचक और धोती का पैरों के साथ-साथ सिमटना-फैलना, सभी चुम्बक का-सा आकर्षण पैदा कर रहे थे। क्षणभर के लिए उसे प्रतीत हुआ मानो मोहिनी के शरीर से तरंगें निकलकर उसके भीतर प्रवेश कर उसे गुदगुदा रही हैं।

मोहिनी चली गयी। जटाशंकर एक गहरी साँस लेकर मुस्करा उठा। शरीर-धर्म ! तभी तो ऋषि-मुनि पहले इसी शरीर को साधते हैं। वह अपने ऊपर इतना नियन्त्रण कर चुका है। फिर भी क्षण भर के लिए ही सही, माया अपना भ्रमजाल उसके सामने फैला ही देती है। वह मन ही मन हँसा। मोहिनी का शरीर भी दूसरों की तरह दो हाथ-पैर, आँख-कान वाला एक यन्त्र ही है जिसके भीतर भी रक्त, माँस, मज्जा, मल-मूत्र आदि ही भरा पड़ा है, और कुछ नहीं। तो फिर उसकी काया में चुम्बक का-सा आकर्षण और उससे तरंगें आने का अनुभव कितना मिथ्या भ्रम है। साधारण-जन इसी भ्रम के वशीभूत होकर इसे ही वास्तविक सत्य मान लेते हैं, तो इसमें उनका क्या दोष है। जो भी हो, उसकी दृष्टि

भ्रमजाल को भेदकर उसके वास्तविक रूप को पकड़ लेती है, यह उसकी स्थूल प्रकृति पर विजय का ही द्योतक है।

रात को जटाशंकर की नींद एकाएक टूट गयी। वह अचकचाकर उठ बैठा। यह कैसा विचित्र स्वप्न दिखायी दिया उसे। पहाड़ गये उसे वर्षों हो गये हैं। तो फिर पहाड़ों की वर्फीली चोटियां क्यों उसे अचानक दिखायी दीं और क्यों वे चोटियाँ तत्काल ही सिमटकर एक श्वेत वस्त्रधारिणी सुन्दर सौम्य तरुणी वनकर उसकी ओर वढ़ी। कहीं सरस्वती देवी ने ही तो उसे स्वप्न में दर्शन नहीं दिये? नहीं, नहीं, वह सरस्वती होती तो कमल के पुष्प पर आसीन होकर उसे आशीश देतीं और उसकी ओर उस तरह न वढ़तीं जिस तरह कि वह वढ़ा। हो न हो, जाग्रतावस्था में उसे भ्रमित न कर सकने के कारण माया ने ही सुप्तावस्था में उसे दिग्भ्रष्ट करने के लिए यह रूप धारण किया था। लेकिन वह असफल रही, यह सोचकर जटाशंकर को मन ही मन प्रसन्नता हुई। इतना जितेन्द्रिय वह हो चुका है कि ठीक समय पर वह जाग गया। अपनी विजय की खुशी में कुछ देर तक नींद न आने के कारण करवटें लेते रहने के वाद वह सो गया।

दूसरी रात वही स्वप्न जव सोकर उठती हुई और अंगड़ाइयां लेती हुई नवयौवना के रूप में दिखायी दिया, तो उसकी नींद यद्यपि ठीक समय पर टूट गयी, फिर भी वह मन ही मन कुछ परेशान हो उठा। हर चोटी ने तरुणी के एक-एक अंग का कितना सजीव कलात्मक रूप धारण कर लिया था। एक रात को स्वप्न दिखायी दिया। वह तो समझ में आया कि अभी अपनी इन्द्रियों को पूर्ण रूप से जीत न पाने से मायावी मन कुछ ऐसे विचित्र खेल, खेल सकता है। लेकिन दूसरी रात को भी वही स्वप्न, पहले से भी अधिक उत्तेजनात्मक रूप में क्यों दिखायी दिया। कहीं कोई त्रुटि ज़रूर रह गयी है। क्या हो सकती है वह! उसने दिमाग पर जोर देकर सोचने का प्रयत्न किया। ओह! सहसा उसे विचार आया, "साधना के ऊँचे स्तर पर पहुँच जाने पर तपस्वियों के सामने प्रलोभन उपस्थित होते हैं। कहीं यही सब तो उसके साथ भी नहीं हो रहा है।" तो क्या

वह इतना ऊँचा साधक बन चुका है। क्या पता ! हो सकता है पूर्व जन्म की आध्यात्मिक शक्तियाँ उसके भीतर पहले से ही विद्यमान हों और इतनी ही साधना से वे जाग्रत हो गयी हों। जो भी हो, वह अत्यन्त सतर्क और सजग होकर एक एक कदम उठायेगा। क्यों न वह मोहिनी से भी कह दे कि वह पाठ समाप्त होने के पहले ही चली जाया करे और जो कुछ भी लाना हो पहले की तरह उसकी अनुपस्थिति में लाकर रख जाया करे। ऐसा करने से मोहिनी कहीं उसे दुर्बल न समझने लगे। फिर इन परीक्षाओं से भागकर तो वह उनमें उत्तीर्ण न हो पायेगा। उसे यदि इस मार्ग पर चलना है, तो उसे असली डर अपने ही मन से हो सकता है, बाहर से नहीं। वही उसके वश में हो जायेगा तो उसके लिए जैसे दो पैरों वाले पुरुष हैं, चार पैरों वाले पशु हैं, वैसी ही दो पैरों वाली नारी होगी। समस्या का काफी अच्छा समाधान हो जाने से उसका मन शान्त हो गया और वह गहरी नींद में सो गया।

अगली रातों को भी सपने आये, लेकिन वे प्रभावहीन थे कि न तो जटाशंकर की नींद टूटी और न सुबह उठने पर उसे यही याद आया कि उसने क्या देखा था। अब सारी चिन्ता उसे पिता के आगमन पर उत्पन्न होने वाले दृश्य की थी। माँ आ गयी है, इसलिए पिता जी अवश्य ही आयेंगे। माँ जिस तरह उस रोज़ मंतर वाला गुड़ उसे दे रही थी, उससे स्पष्ट है कि गाँव में भी उसके खिलाफ़ चर्चा फैली है। कल सुबह पिता जी आये, तो वे अत्यधिक आवेश में आयेंगे, यह निश्चित है। कैसे वह उनको विश्वास दिलायेगा, शान्त करेगा।

मोहनी दूध लेकर आ गयी। जटाशंकर को लगा उसकी आँखों में वेदना स्पष्ट रूप से उभर आयी है, जिससे उसका स्वस्थ सुन्दर चेहरा कुछ मुरझाया-सा मालूम दे रहा है। उसे मोहनी पर दया आ गयी। बिचारी बताती थी, शराबी पति इसे यहीं छोड़कर किसी दूसरी औरत के साथ कहीं चला गया। माँ-बाप हैं नहीं। इसलिए जो कुछ थोड़ा-बहुत गहना-बहना पास में था, उसे बेचकर यह चक्की लगा ली। जो कुछ मिल जाता

है, उसी से गुज़र बसर करके अपना सती-धर्म निवाहते हुए अगले जन्म में सुखी होने की आशा लगाये बैठी है। इसीलिए जो धर्म कर्म का पक्का हो, ऐसे ही आदमी को अपने यहाँ जगह देती है।

अचानक मोहिनी की आवाज़ से वह चौंका, "वावू, गिलास देखिए। दूध गिरने को है।" और तभी मोहिनी ने उसके गिलास को सँभालने के लिए हाथ वढ़ाया तो उसका पैर टेबुल लैम्प के तार में उलझ जाने से वह उसके ऊपर ही गिर पड़ी। टेवुल लैम्प जमीन पर गिरकर वुझ गया। जटाशंकर ने मन पर पूरा जोर लगाकर उठना चाहा, पर उसे दो वाहें अपने को कसती हुई प्रतीत हुई। कुछ क्षणों तक वह कसमसाया, फिर उसकी सुधवुध जाती रही। उसे लगा जैसे मीठी-मीठी, भीनी-भीनी सुगन्ध ने उसके मन, हृदय और शरीर को निश्चेष्ट करके इतना हल्का कर दिया है कि वह आकाश की ओर उड़ा जा रहा है और हिमचोटियों वाली तरुणी इसकी वगल में आकर, उसके गले में वाहें डालकर, उसके साथ उड़ी चली जा रही है।

सुबह जटाशंकर की नींद टूटी तो उसने देखा सूर्य की किरणें सामने दीवार पर पड़ रही हैं। भारी मन लेकर वह उठा तो सामने फर्श पर बैठी मोहिनी का रोना दवे-दवे स्वर म उसे सुनायी दिया। क्षीण स्वर में उसने पूछा, "क्यों, रो क्यों रही हो?" रोना कुछ और तेज हुआ तो उसने क्षुब्ध स्वर में कहा, "मुझे जल्दी तैयार होना है। पिता जी के आज आने का दिन है। शायद आ ही जायँ।"

"वावू, अव मेरा क्या होगा। आप मर्द हैं, पिता के साथ चले जायेंगे। मैं तो कहीं की न रही।" मोहिनी के स्वर में असीम विवशता परिलक्षित होती थी।

"मैं अव कहीं नहीं जाऊँगा।"

मोहिनी ने उसकी ओर देखा तो जटाशंकर को धक्का-सा लगा। उसकी आँखों के किनारों पर झुर्रियाँ पड़ चुकी थीं और चेहरे पर यौवन अस्ताचल की ओर वढ़ चला था। क्या करे वह? फिसला तो वही।

अब कर्तव्य भी निबाहना ही पड़ेगा।

जटाशंकर ने जल्दी-जल्दी स्नान-पूजा-पाठ समाप्त किया और तख्त पर आकर बैठ गया। मोहिनी चाय ले आयी। उसने चुपचाप सिर झुका कर गिलास ले लिया। बाहर कई पदचाप सुनायी दिये तो उसे सारे शरीर में झुरझुरी सी मालूम दी। चाय का गिलास एक किनारे की ओर रख दिया। हो न हो, पिताजी कुछ लोगों को लेकर आ गये हैं। मोहिनी दरवाजा खोलने के लिये बढ़ी तो उसने खुद उठते हुये उसे टोका, "तुम भीतर जाओ। शायद पिता जी होंगे।"

"मैं भीतर क्यों जाऊँ, बाबू! क्या सच्चाई को छिपाओगे।"

जटाशंकर झुँझला उठा, "सच्चाई नहीं छिपाऊँगा। लेकिन उनके सामने घृष्टता भी तो ठीक नहीं है।"

"मैं उनके पैर छूऊँगी। उनके पैर तो हमें छूने ही चाहिये।"

दरवाज़े पर ज़ोर से सांकल खड़खड़ायी। जटाशंकर ने मोहिनी की ओर क्रुद्ध दृष्टि से देखते हुये दरवाज़ा खोल दिया। पिता के साथ धर्मानन्द चाचा भी थे। उसने पिता के पैर छुये। वे अशीशवचन कहने ही जा रहे थे कि उनकी नज़र कोने पर खड़ी मोहिनी पर पड़ गयी। उनका मुँह तमतमा गया। लाठी ज़मीन पर पटकते हुये वे जटाशंकर पर बरस पड़े, "ओह, तो यह डाकिनी चुड़ैल। इसी ने तेरी बुद्धि को भ्रष्ट किया है। तो बोल, तुझे चलना है मेरे साथ इसी दम, या मैं तुझे घसीट कर ले जाऊँ। कुल-कलंकी, या तो तू चलेगा या कहीं मेरा प्राणान्त होगा बोल, तुझे क्या मंजूर है।"

जटाशंकर को घबड़ाकर इधर-उधर बगलें झांकते देख मोहिनी ने उसके पिता की ओर घूंघट की ओट करके उससे कहा, "बताते क्यों नहीं, तुझ मुझे अपनी औरत मान चुके हो।"

जटाशंकर ने आतंकित होकर पिता की ओर देखा। उसे लगा जैसे ज्वालामुखी धधकने ही वाला है। उसने चीखकर मोहिनी से कहा, "तुम भीतर जाओ।"

"हाँ, मैं भीतर जाऊँ और तुम घर को खिसक जाओ। तुम लोगों का वश चले तो हमें कच्चा ही निगल जाओ।"

मोहिनी की घृष्टता देख जटाशंकर क्षण भर के लिये स्तब्ध रह गया। आगे वह क्या न कह दे और पिता जी क्या न कर बैठें, इस डर से उसने मोहिनी को धकियाते हुये भीतर ले जाना चाहा। धक्का कुछ ज़ोर का लग जाने से मोहिनी गिरने को हुई तो उसने जटाशंकर का सहारा लेने के लिये पकड़ना चाहा। पर हड़बड़ में उसकी जटायें ही उसके हाथ आयीं। पिता ने यह देखा तो उफनते हुये क्रोध से जटाशंकर का हाथ पकड़कर उसे दरवाज़े की ओर खींचते हुये गुर्राये, "बस, नराधक, तेरी मुक्ति मेरे साथ चलने में ही है।"

मोहिनी ने उसके बाल और भी कसकर पकड़ लिए। जटाशंकर दर्द से कराह उठा।

धर्मानन्द ने झपटकर जटाशंकर के पिता का हाथ पकड़ते हुये कहा, "पंडित जी यह आप क्या कर रहे हैं। इस तरह तो इस त्रिशंकु की जटायें और हाथ दोनों उखड़ जायेंगे। यह औरत रुपया चाहती है। सत्यानन्द से भी इसने रुपया लिया था।"

झटके से जटाशंकर का हाथ छोड़कर उसके पिता दाँत पीसते हुये बोले, "उसी चाण्डाल ने ही तो इसे इस नरक में फेंका है।"

उनकी और धर्मानन्द की ओर आँखें तरेर कर देखते हुये मोहिनी ने भी जटाये छोड़ दीं। जटाशंकर सहमा-सहमा ज़मीन पर नज़र किये खड़ा रहा।

धर्मानन्द आगे बढ़कर मोहिनी के सामने तनकर खड़े हो गये, "देख, सत्यानन्द का मामला मेरे रिश्तेदार ने ही रफ़ा-दफ़ा किया था! मुझे तेरे बारे में सब मालूम है। क्या-क्या कर्म तूने किये···?"

"मैंने ही किये कुकर्म!" मोहिनी भभक उठी, "तुम लोग यहाँ पुण्य कमाने आते हो! सत्यानन्द ने क्या मुझे कम धोखा दिया? तुम धोखा दो तो ठीक। मैं कुछ करूँ तो डाकिनी चुड़ैल।"

जटाशंकर के पिता को ज़मीन पर ज़ोर मे लाठी ठोक कर विकट मुद्रा में मोहिनी की ओर बढ़ते देख धर्मानन्द किसी भयानक घटना की आशंका से सिहरकर उनके और मोहिनी के बीच में आ गये और निर्णायक स्वर में बोले, "तुझे रुपया चाहिये !"

जेब से रुपयों की एक गड्डी निकाल कर मोहिनी के सामने तख्त पर डालते हुये धर्मानन्द उसी स्वर में बोला, "जितना सत्यानन्द से दिलवाया गया उतना ही रख दिया है। अब कुछ भी चूँ-चपड़ की तो समझ लो हमसे बुरा कोई नहीं होगा।" फिर जटाशंकर के पिता की ओर देखकर बोला, "अच्छा पंडित जी, अब चलिये जटाशंकर को लेकर।"

जटाशंकर को कुछ संकोच करते देख धर्मानन्द ने उसकी बाँह में अपनी बाँह डालकर उसे ले जाते हुये कहा, "अब भी क्या कुछ शक-सुबह है ?"

जटाशंकर का मन बेहद आतंकित होने पर भी उसे यह आशंका बार-बार कुरेद रही थी कि सत्यानन्द के बारे में सारी बातें इन लोगों की गढ़ी हुई न हों और मोहिनी का व्यवहार एक डूबते हुये मनुष्य का अपने रक्षक को भी साथ लेकर ले डूबने का न रहा हो। दरवाज़े तक खींचते-खींचते चले जाने पर भी उसने सहसा पीछे को ओर मुँह मोड़कर मोहिनी पर दृष्टि डाली।

वह शान्त भाव से रुपये गिन रही थी।

०

नयी जिन्दगी

वार्ड में प्रवेश करते ही कमला एक क्षण के लिए ठिठकी और उसने अपने को संयत करना चाहा। पर रोकते-रोकते भी एक हल्की-सी सिहरन उसके सारे शरीर में दौड़ गयी। मन ही मन वह बड़ी लज्जित हुई। इतना अर्सा बीत गया। लेकिन कोशिश करने पर भी पहले दिन का दृश्य उसे भुलाये नहीं भूल पा रहा है। दृश्य भी कैसा था। वह आतंक से सचमुच कांप उठी थी। किसी जवान की एक टांग काट दी गयी थी, किसी की दोनों। किसी का एक हाथ कटा था, किसी के दोनों। किसी के हाथ और पैर दोनों कटे थे। किसी का मुंह पट्टियों से इतना ढक गया था कि सिर्फ आँखें, नाक के छिद्र और होठ खुले रहने से वह अमानवीय लगता था। उन सबको देख प्रतीत होता था मानों मनुष्य कोई प्राणवान चीज न होकर सिर्फ हड्डी और मांस का ढेर हो जिसे जिधर से चाहो, जितना चाहो, काट लो।

वे जवान लड़ाई के मैदान में गोलियों से आहत होने के पहले स्वस्थ, सुन्दर और सुडौल रहे होंगे, यह कल्पना करना भी उसके लिए मुश्किल था। जो वेहोश थे उनमें जिन्दगी की कोई हरकत न थी। जो होश में थे, वे दर्द से कराह रहे थे! उनके चेहरों पर घोर यातना का भाव तो था लेकिन आतंक का कहीं नामों-निशान भी नहीं था। उसे यह देख बड़ा आश्चर्य हुआ था। इसके पहले उसका हमेशा डरे-सहमे, रोते-चीखते,

रोगियों से ही साबका पड़ा था। पहली बार वह बिल्कुल नये ढंग के प्राणियों को देख रही थी।

कमला सांवल सिंह के पलंग के पास आकर बैठ गयी। उस कोने में वह अब अकेला रह गया था। उसके सामने ही उसे यहाँ लाया गया था। कितनी गंभीर हालत थी इसकी उस समय। भाग्य में बचना होगा और क्या। तीन दिन और रात जिंदगी और मौत के बीच झूलता रहा था। आखिर मौत हार मानकर वापस लौट गयी। वीरता का पुरस्कार पाया है इसने! लेकिन अहंकार उसे छू भी नहीं गया है! उससे किस तरह बोलता है जैसे वह भी उसी के समान सम्मान करने योग्य हो। दूसरे फौजियों से यह कितना भिन्न है। हमेशा कुछ न कुछ पढ़ता या सोचता रहता है। उसे भी इसके निकट बैठे रहने या इससे बातें करने में कितना आत्म-संतोष मिलता है। क्यों? यह वह स्वयं नहीं जान पायी है। उसे लगता है जैसे शून्य में भटकते हुए उसे उसका कोई आत्मीय मिल गया हो।

सांवल सिंह पीठ पीछे तकिये का सहारा लिये खिड़की के बाहर एकटक देख रहा था। पानी पीने के लिए उसने करवट ली तो कमला को वहाँ बैठे देख मुस्करा कर बोला, "कल मैं भी चला जाऊँगा यहाँ से। कैसा अजीब पेशा है हमारा। तुम्हारा और मेरा दोनों का। हम दूसरों की रक्षा के लिए जीते हैं। तुमने भी क्या मेरी कम सेवा की है।" कमला को अपने गले में कुछ अटकना हुआ-सा प्रतीत हुआ। क्या वह सचमुच सेवा करने के लिए ही नर्स बनी थी? आत्म-ग्लानि की एक तीव्र-धारा उसके हृदय और मन को जड़वत बनाती हुई उसकी नस-नस में प्रवेश कर गयी। उसे लगा जैसे वह गन्दे मैले पानी के एक गहरे कुंड में डूबती चली जा रही है और चारों ओर अंधेरा छाता जा रहा है। सामने सांवल सिंह की सूरत भी धीरे-धीरे धूमिल पड़ती हुई ओझल होने लगी। अतीत की पर्तों से ढकी हुई शीतल प्रसाद की घिनौनी दृष्टि उसे एकटक घूरती हुई सामने आ खड़ी हुई।

वह मुश्किल से तेरह वर्ष की रही होगी। चाचा-चाची अपने सिर का भार कहीं उतार फेंकने के लिए चिन्तित हो गये। माँ-बाप उसके बचपन में ही परलोक सिधार गये थे। उनके साथ वह भी मर जाती तो सभी निश्चिन्त हो जाते। लेकिन वह मरती कैसे। फिर इतना सब कौन भुगतता! वह बेशर्म होकर बड़ी होती गयी। चाची उसे फूटी आँख भी न देख पाती। जब जी चाहा कोसने लगती, "कुलच्छन, पैदा होते ही मां-बाप को डस गयी। अब हमारी छाती पर दाल दल रही है। करम-फूटी खा-खाकर दुहरी हुई जा रही है। बैठे-बैठे इसका मांस न चढ़ेगा, तो हमें चढ़ेगा ?"

सुबह से शाम तक काम में लगे रहने पर भी चाची को संतोष न था। करतीं भी दया खाना उनका ही कहाँ पूरा पड़ता था। उस दूर गांव में साल भर का खाना किसी का भी न जुट पाता था। खुद तंगहाल में रहते हुए वे उसे कैसे अच्छी निगाह से देखतीं।

आखिर उसका व्याह रचा गया। वह ससुराल गयी। पति रोगी और सास की एक आँख बचपन में ही खराब हो गयी थी। पति एक छोटे-से प्राइमरी स्कूल में दो-चार घन्टे पढ़ाने के श्रम से ही सारे दिन बेदम होकर लेटे रहते। सास को दूसरी आँख से भी कम सुझायी देने लगा था।

पति का रोग अचानक बढ़ गया पेट फूल गया। सांस लेना भी दूभर होने लगा। उसे और सास को लेकर वे शहर में इलाज के लिए अपने रिश्तेदार शीतल प्रसाद की कोठी पर पहुँचे। सोचा था दो-चार दिन के लिए वे भगायेंगे नहीं। वहाँ मेडिकल कालेज में दिखा कर गांव लौट आयेंगे।

शीतल प्रसाद बड़े आदमी थे। ठेकेदार थे। सास और पति की बातें सुनी तो मुंह बिचका कर बिना कुछ कहे ही भीतर जाने के लिए मुड़ गये। लेकिन उस पर नजर पड़ते ही रुक गये। कैसी थी उनकी दृष्टि ? सीधी अनुभव शून्य होने पर भी उसे उस दृष्टि में कितनी गन्दगी दिखाई

दी थी, जैसे कीचड़ आँखों की राह निकल पड़ा हो। मन ही मन वह बेहद डर गयी थी उनसे।

नौकरों के क्वार्टरों में दो अलग कमरे उन्हें मिले। शीतल प्रसाद की पत्नी नहीं रही थीं। लड़की का ब्याह कर चुके थे। लड़का किसी दूसरे शहर में अफसर था। साथ में केवल माँ रहती थीं जो अपने भतीजे के ब्याह में में डेढ़-दो महीना पहले ही चली गयी थीं। बंगले पर नौकर रसोइये के अलावा कोई नहीं था।

सास की छोटी-सी पूँजी जल्द ही खतम हो गयी। इलाज अभी वहीं रहकर जारी रखने को डाक्टर ने कहा। शीतल प्रसाद ही दवा पानी का खर्च देने लगे! दवाई नौकर सास के हाथ में दे जाता, रुपया शीतल प्रसाद खुद आकर पहले सास के सामने उसके हाथ में देते थे। कुछ दिन बाद उसे दूसरे कमरे में बुलाकर पति का हाल-चाल पूछने के बाद उसके हाथ में देने लगे। रुपया देते समय वे उसके चेहरे के भाव को अपनी पैनी दृष्टि से देखने का प्रयत्न अवश्य करते। आँखे नीची रहने पर भी वह उनकी तीक्ष्ण दृष्टि का अनुभव अपने चेहरे पर करती।

सास से उसने कई बार कहा भी कि शीतल प्रसाद से रुपया वे ही ले लिया करें। लेकिन वे उसकी बात सुनी अनसुनी कर देतीं। शीतल प्रसाद का आग्रह बढ़ा। वे सास से बोले, आज मुझे कहीं और भी जाना है। यह मेरे साथ कार में चलकर दवायें लेकर आ जायेंगे। मैं इन्हें दवा समझा भी दूँगा। सास ने अपनी सहमति दे दी।

शीतल प्रसाद ने उस रोज उसके लिए बढ़िया साड़ी खरीदी। हाथों में कीमती चूड़ियाँ और कानों में एअररिंग पहनवाये। शानदार होटल में बैठकर चाय पिलायी। जितनी ही सकुचाकर वह उनकी ओर देखती उनकी आँखों में गन्दगी उतनी ही तेजी से उभर कर बाहर आने को होती। ना कहे या कुछ कहे, ऐसी स्थिति में वह थी ही कहाँ।

शीतल प्रसाद ने दवा लाने के बहाने शाम का वक्त उसके साथ सैर सपाटे के लिए रख लिया। अपनी दी हुई साड़ियाँ पहनवाकर जब रोजाना

उसे कार में ले जाते। पति कैसा भी हो, उसके घर में बीमार रहते हुए उसे यह सब अच्छा न लगता। पर वह क्या करती ? सास चुप थीं। पति को दवायें और खाना-पीना अच्छी तरह मिल रहा था।

शीतल प्रसाद का हाथ कभी उसकी पीठ पर, कभी कन्धे पर आ पड़ता। लेकिन उसके संकोच से अत्यन्त सिकुड़ जाने पर हट जाता। उसका मन विरक्ति से भर उठता। वह अब भी यही चाहती थी कि कोई शीतल प्रसाद को उसे अपने साथ ले जाने से मना कर दे और वह मुक्ति पा जाय। लेकिन मना करने वाला वहाँ था कौन ?

शीतल प्रसाद के साथ उसका घूमना-फिरना बढ़ गया। उसकी आँखों के सामने भी मायाजाल छाने लगा। दलदल को वह साफ पानी का पोखर समझ बैठी। न भी समझती तो क्या कोई दूसरा परिणाम होता ? शीतल प्रसाद के वादे उसे सच प्रतीत होने लगे। स्त्री को पथभ्रष्ट करने का इच्छुक पुरुष उससे कितनो मिन्नतें करता है, कैसे-कैसे वादे करता है, यह बात पहली बार उसने तब जाना। शीतल प्रसाद ने कितने दीन भाव से उससे याचना की "तुम्हारे पति न बचेंगे। डाक्टर उम्मीद छोड़ चुके हैं। फिर भी इलाज करा रहा हूँ जिससे कि तुम्हारे दिल को तसल्ली रहे। मैं अकेला हूँ। कोई देख-भाल करने वाला नहीं। माँ बूढ़ी हो चुकी है। तुम जिन्दगी भर इसी घर में रहना। मुझे घर-बार देखने-भालने का समय ही कहाँ मिलता है।"

पति की हालत बिगड़ी तो शीतल प्रसाद ने उन्हें अस्पताल में भर्ती करा दिया। सास शाम को कार में अस्पताल में उनके साथ रहने के लिए चली जातीं। उसके सोने के लिए शीतल प्रसाद ने अपने बगल के कमरे में प्रबन्ध कर दिया।

पति भी गये। शीतल प्रसाद ने सास के रहने का प्रबन्ध भी उसी के कमरे में कर दिया। एक आड़ की जरूरत थी। उन्हें सो मिल गयी।

शीतल प्रसाद शादी से लौटे तो माँ साथ थीं। बुढ़िया होने पर भी वह तगड़ी औरत थीं। उसे और सास को बंगले के भीतर देखा तो पहले

चकराई। नौकर-रसोइयों से बात-चीत की। और एक दिन शीतल प्रसाद के पीठ पीछे दहाड़ उठीं "मेरे जीते जी यह सब इस घर में नहीं हो सकता।"

शीतल प्रसाद की माँ ने अपनी एक दहाड़ से इस कृत्रिम आवरण को ही समाप्त सा कर दिया। तब अचानक अपनी असली हालत का बोध हुआ। उसे लगा जैसे किसी ने उसके सिर पर हथौड़े की चोट कर उसे जगा दिया हो। वह रोती हुई शीतल प्रसाद के पास गयी। कहने को तो उन्होंने कहा, "घबड़ाओ मत, सब ठीक हो जायगा।" लेकिन उनकी आवाज भरी हुई थी। उसमें अब न मिन्नत थी, न आग्रह और न कोई उत्साह। स्पष्ट था कि उनकी अब उसमें कोई रुचि नहीं थी। सामने मोठे बने रहने पर भी उन्होंने अपनी माँ को पूरी छूट दे दी। शीतल प्रसाद के ऐश्वर्य का क्षणिक भोग करते ही वह आकाश में उन्मुक्त उड़ चली थी लेकिन अपने सीधेपन में वह भूल गयी थी कि उसके पर शीतल प्रसाद के ही दिये हुए हैं। उनके उन्हें वापस लेते ही वह परकटी चिड़िया की तरह जमीन पर आ गिरी। शीतल प्रसाद की माँ ने उसे उसके चाचा के घर और सास को उनके जेठ के यहाँ भेजकर ही दम लिया।

अचानक कमला की तन्द्रा टूटी। सांवल सिंह मुस्करा कर उलाहने के स्वर में कह रहा था, "कहाँ खो गयी हो ? मैं क्या कह रहा हूँ, यह सुन भी रही हो। मालूम पड़ता है जिन्दगी के बहुत-से उतार-चढ़ाव तुमने भी देखे हैं। क्यों ? उसी की याद आ रही है ? सभी की जिन्दगी में ये···।"

उतार-चढ़ाव ? उसके जीवन में चढ़ाव आया ही कब ? ढलानों पर ही वह लुढ़कती चली आ रही है। अनायास ही हृदय की अतल गहराइयों से उठते हुए विश्वास ने उसके मर्म को छूकर उसे विचलित कर दिया। उसका मन फिर भटक गया।

उसे लौटकर आया देख चाची पहले से भी अधिक विकराल हो गयीं। उसकी बदनामी भी उन तक पहुँच गयी थी। शायद शीतल प्रसाद की माँ से ही जगह-जगह बात फैली थी। विवाह के पहले अनाथ थी और अब

अनाथ और बदचलन दोनों। शीतल प्रसाद की माँ ने भी जो न कहा था, चाची ने वह भी कह दिया। अब तो जो जैसा चाहे वैसा बर्ताव कर सकता था उसके साथ।

स्कूल की छुट्टियाँ हुईं। जयगोपाल गाँव लौट आया। जैसे ही उसे अकेला पाया, उसका रास्ता रोक खड़ा हो गया। उसकी कुटिल मुस्कान और प्रसन्न मुद्रा से साफ़ प्रकट हो रहा था कि वह अब उससे नहीं डरता। ब्याह के पहले एक बार वह उसे फटकार चुकी थी। वह खींसे नीपोरता हुआ बोला, तुझे जितना बुरा समझती है, वैसा मैं नहीं हूँ। तेरे ठेकेदार के साथ रहने की बात भी मुझे मालूम है। कै दिन तेरी चाची तुझे यहाँ रहने देगी। कहीं तो जाना ही होगा तुझे। खुद ही यह समझती होगी। आखिर क्या करेगी तू ? बता कहाँ जायेगी तू ? मैं तुझे तेरे ब्याह के पहले से चाहता हूँ। मैं अकेला हूँ। मेरे साथ चली चल तुझे रानी की तरह रखूँगा।

जब भी मिलता, यही सब दुहराता। बात सच थी। गाँव में वह अब नहीं रह सकती थी। फिर एक ख्याल और भी आया। हो सकता है, वह जयगोपाल से घृणा करती रही हो, लेकिन वह उसे चाहता रहा हो। भला हो या बुरा, वही एक था जो उसे आश्रय देने की बात कह रहा था। क्या मालूम उसके साथ जिन्दगी कट जाय।

जयगोपाल के जिद्द करने पर वह उसके साथ चुपके से भागकर चली गयी। जयगोपाल के पास-पड़ोस में उसके स्कूल के लोग ही थे। उन सबको उसने उसे अपनी विवाहिता पत्नी बताया। सबने उसे इसी रूप में स्वीकार किया। दिन कटने लगे। वह माँ बनने का हुई। उसका हृदय प्रसन्नता से भर उठा। अपना घर, अपनी सन्तान, यही तो वह चाहती थी। सबकी नजरों में वह एक पत्नी थी। फिर वह क्यों किसी से कुछ छिपाती ! लेकिन जयगोपाल ! उस पर तो मानो मुसीबत का पहाड़ ही टूट पड़ा। वह स्तब्ध रह गयी उसकी बातें सुनकर। उसे फिर धोका हुआ था।…लेकिन क्या वह

चाहती भी तो धोखा खाने से बच सकती थी ? जयगोपाल ने दवा के नाम पर उसे जो कुछ खिलाया उससे जो वह चाहता था सो हो गया। लेकिन वह सख्त बीमार पड़ गयी। पास-पड़ोसी आये। डाक्टर बुलाया गया। बात खुल गयी। सबके मन में शक बैठ गया। सामने के मकान में रहने वाले जयगोपाल के अध्यापक मित्र ने आकर उसे आगाह किया, मैं तो यकीन नहीं करता जयगोपाल जी। लेकिन तुम्हें बताये दे रहा हूँ जिससे कि तुम होशियार रहो। लोगों को शक है कि तुम्हारी स्त्री तुम्हारी विवाहित पत्नी नहीं है। इसीलिये तुमने……।"

जयगोपाल ने बात को हँसी में टालने की कोशिश की लेकिन भीतर से शायद वह काँप उठा। कुछ दिन वह बड़ा उद्विग्न रहा। फिर पता नहीं कहाँ-कहाँ दौड़ धूप में व्यस्त दिखायी दिया। आखिर जब वह उसके पास आया तो अधीरता से बोला, 'कमला तुम्हारा कुछ दिनों के लिए अलग रहना बहुत जरूरी हो गया है। कहीं इधर-उधर बात फैली तो लेने के देने पड़ जायेंगे। नौकरी गयी तो भूखा मरना पड़ेगा।'

मुझसे न रहा गया था। बीच ही में बोल उठी थी मैं, 'विवाह कर लो तो सारी झंझट खत्म हो जायगी।' वह सकपका गया। उसका चेहरा उसके मन की बातें साफ-साफ कहे दे रहा था। वह उससे सिर्फ मन बहलना चाहता था। अब सामने खतरा आया तो छुटकारा पाने के लिए छटपटाने लगा था। कितनी निर्लज्जता से बोला वह, 'यहाँ हम कह चुके हैं कि हम विवाहित हैं। अब दूसरी बार विवाह की बात सुनकर सबका शक ओर बढ़ जायगा। तू फिक्र मत कर। मैंने तुझे डा० शर्मा के क्लिनिक में नर्स बनने का इंतजाम कर दिया है। उसके लड़के को मैं पढ़ा चुका हूँ। वहाँ तू आराम से रहेगी। मैं तेरे पास आता रहूँगा। फिर कोई कुछ कह न सकेगा।' जयगोपाल के लिए वह एक असहाय पशु की तरह थी जिसे किसी की भी खूँटी पर भी जब चाहो बांधा जा सकता था।

कमला की विचारधारा अचानक टूटी। सांवल सिंह उसकी ओर एक

टक देखते हुए चारपाई से उठ रह था। उसे खिसियाते देख हँसते हुये बोला, 'क्यों, पुरानी बातें पीछा नहीं छोड़ रही हैं। अच्छा, तुम जितना सोचना है सोच लो। मैं एक मिनट में आता हूँ।' कमला अपने ऊपर खीझ उठी। क्या होगा यह सब सोच कर। उसने मन पर काबू पाना चाहा। लेकिन उसके तो जैसे पंख लग गये थे। पकड़ में आने के पहले ही वह फिर उड़ चला।

कितना बड़ा था डा० शर्मा का क्लिनिक दूर-दूर। के रोगी तक वहाँ आते थे। नर्सिंग का काम सीखने में उसे देर न लगी। उसका इम्तहान भी पास कर लिया उसने। वहाँ कुछ ही नर्सें अधेड़ थीं। बाकी सब जवान और बड़ी खूबसूरत थीं। अधिकतर विधवाएँ थीं। सुन्दर जवान विधवाओं के प्रति पता नहीं क्यों डाक्टर शर्मा का बेहद अनुराग था। डाक्टर स्वभाव के अच्छे थे। तनख्वाह, कपड़े वगैरह सब वक्त पर उन्हें मिल जाते थे। खाने-पीने का भी आराम था। उसे इस जिन्दगी से भी कोई शिकायत नहीं थी। लेकिन शान्ति से रहना उसके भाग्य में बदा ही कहाँ था। फूटा भाग्य लेकर तो वह पैदा ही हुई थी। नाथ को किसी नाथ का सहारा चाहिए कि नहीं। वह न रहे तो······? डाक्टर अचानक कार की दुर्घटना में मर गये। कुछ दिन चलकर क्लिनिक भी बन्द हो गया। किसी को भी पता नहीं था, उसे कहाँ जाना है। उसे मेडीकल कालेज में जगह मिल गयी।

क्या जिन्दगी थी वहाँ भी? जिसके पास भी अधिकार होता, वही उसका मालिक बन जाता है। उसे तो सिर्फ हाँ ही कहना होता। नहीं तो किसी वक्त भी बाहर कर दी जाती। कहीं किसी ने उसका हृदय नहीं देखना चाहा। सभी के लिए वह सिर्फ एक मांसपिंड रही जिससे वे संतोष पाते।

अब वह सैनिकों के इस अस्पताल में······

कमला का ध्यान सांवल सिंह की आवाज से टूटा। वह लौट आया था और उसे पहले की तरह निश्चल बैठा देख कर कह रहा था, 'ये आँखें

गीली क्यों हैं। तुम क्या समझती हो इस देश के सारे दुख अकेले तुम ही उठा रही हो ? मैंने भी तुमसे कम नहीं सहा है……।'

सांवल सिंह का यही रूप तो कमला समझ नहीं पाती। वह बहादुरी से लड़ा, ठीक है। वह सैनिक है। उसका यह कर्त्तव्य है। इतना वह समझती है। लेकिन वह जान-बूझकर मौत के मुँह में क्यों कूदा ? क्यों ? इसने ही जिन्दगी में क्या पाया है ? बाप की जो थोड़ी-सी जमीन थी वह महाजन ने हड़प ली। उन्हें बच्चों को लेकर गाँव से भागना पड़ा। शहर में मजदूरी से पूरा पेट भी किसी का न भरता था। गन्दी बस्ती में सभी छोटे भाई बहनों को इसने एक ही महामारी में तड़प-तड़प कर मरते देखा। जवान होकर यह भी मजदूर ही बना। इसे पढ़ने का शौक था। एक बाबू मेहरबान हो गये। पेट काटकर भी किसी तरह इसने पढ़ा। डरता किसी से न था। काम डटकर करता और अधिकारों के लिए सबसे आगे रहकर लड़ता। एक बार मिल-मालिक से भिड़ गया। उसने गुण्डों से हमला करवा दिया। सख्त घायल हो गया यह। महीनों चारपाई पर पड़ा रहा। नौकरी चली ही गयी थी। अच्छा होते ही फौज में भर्ती हो गया। फिर यह किसके मौत से भिड़ा ? इतना सहने पर भी इसमें खिन्नता क्यों नहीं है ? इसकी आशा का स्रोत है। और यह इतना सोचता क्या है ?

कमला अपने मन में उठी हुई जिज्ञासा को प्रकट किये बिना न रह सकी। 'सोच रही हूँ तुम किसके लिए मौत के मुँह में कूदे ? तुमने भी जिन्दगी में क्या सुख पाया है ?'

सांवल सिंह का चेहरा गम्भीर हो गया, 'देखो, जाने-अनजाने क्या सभी हर समय नहीं लड़ रहे हैं। तुम या मैं इतना भुगतकर भी क्यों जी रहे हैं। एक नयी जिन्दगी की उम्मीद क्या हमें आगे धकेले नहीं जा रही है ? लेकिन बिना लड़े यह नयी जिन्दगी नहीं आयेगी…।'

कमला एक क्षण के लिए अपने को भूलकर बड़े अधीर स्वर में बोल उठी, 'मेरे लिए नयी जिन्दगी कहाँ है ? कौन अपनायेगा मुझे ? मैं किसी के क्या काम आ सकती हूँ…।'

'जिसे मैं अपना कहूँ, ऐसा मेरा कोई भी नहीं है दुनिया में, कमला। तुम मेरे साथ आना चाहो तो मुझे खुशी होगी।'

कमला मूक दृष्टि से कई क्षणों तक सांवल सिंह को देखती रह गयी। आँखों में आँसू छलछला आये। रूमाल से उन्हें पोछते हुए वह ड्यूटी के लिए उठी। उसे लगा जैसे वह हवा में उड़ती चली जा रही है।

◉

लहर

ठाकुर फतेहसिंह अंग्रेजों के जाने से प्रसन्न नहीं थे। उनका निश्चित मत था कि राज करना अंग्रेज ही जानते थे। उनका न्याय अटल था। छोटे अपनी जगह पर रहें, बड़े अपनी जगह पर। मजाल थी कि छोटे आदमी, मुंह लगना तो दर किनार, सीधी आँखें करके देख भी लें। अंग्रेज राज की बदौलत ही खुद उनका अपने इलाके में कितना दबदबा था। जिधर से निकल जाते, सब रास्ता छोड़ जमीन छूकर बन्दगी करते। इसे वे अपना फर्ज मानते थे। इसी अदब-कायदे से समाज की मर्यादा बनी हुई थी।

अंग्रेजों की खूबी यही थी कि वे इस चीज को समझते थे। इसीलिए उनके आतंक के सामने सब झुके रहते थे। किसी का दिमाग फिरा नहीं, उसे सींखचों के भीतर ही जगह मिलती थी।

इतने न्याय प्रिय शासन को भी जब ठाकुर साहब ने अपने सामने-सामने ढहते देखा, तो उन्होंने भरे हृदय से इतना ही कहा, "भगवान की यही मर्जी होगी। इस देश के अब बुरे दिन आ गये। ये लोग अब सिर भी पटकेंगे तो ऐसा राज उन्हें कभी नसीब न होगा।"

जमींदारी भी खत्म हो गयी, तो उन्होंने कुढ़कर अपने कारिन्दे से कहा, "नोरंगलाल, यहाँ से जाने की तैयारी करो। अब शहर में ही रहेंगे।" आज तक जो उनके दबैल थे, वे अब उनकी बराबरी करें, इसे वे गवारा न कर सके।

ठाकुर साहब शहर की अपनी कोठी में आ गये । उनका बड़ा लड़का उसी में रहता था । शहर में आश्चर्यजनक परिवर्तन देख वे चकित रह गये । हजारों शरणार्थी आ चुके थे । और भी न जाने कहाँ से इतने लोग आते जा रहे थे कि शहर में तिल रखने की भी जगह न बची थी । जहाँ पहले जमीन-मकानों के लिए किराएदार मिलना मुश्किल था, वहाँ अब दुगुने-तिगुने किराये पर भी मकान मिलना लगभग असंभव हो गया था । यहाँ तक कि भुतहा मकानों में भी लोग आ गये, तो भूतों को ही अपना डेरा हटा लेना पड़ा ।

ठाकुर साहब ने मन ही मन परमात्मा को प्रणाम किया । अपने को अंग्रेजों से होशियार समझने वालों ने उनकी जमींदारी खत्म कर दी थी, लेकिन परमात्मा ने यहीं शहर में उनके लिए दूसरा हीला निकाल दिया था । अपनी कोठी के बाहर ही उन्हें सोने की खान मिल गयी । जब वह कोठी बनी थी, तो आधा शहर वीरान था । कोठी के साथ काफी अधिक जमीन थी । उनके पिता बड़े ठाकुर ने कोठी की हदबन्दी करके बाकी बेकार जमीन को जितना भी किराया मिला, उसी पर उठा दिया था । मछुए, मल्लाह, मोची, धोबी, मजदूर, खोम्चेवाले, अपनी-अपनी छोटी-छोटी झोंपड़ियाँ बनाकर उनमें रहने लगे थे । अपनी इस जमीन पर बसी हुई बस्ती को हटाकर वे उस पर पचास फ्लेट्स भी किराये के लिए बना दें, तो गाँव की गयी हुई जमींदारी शहर में ही कायम हो जाएगी ।

ठाकुर साहब ने अपने कारिन्दे को बुलाकर कहा, "नौरंगलाल, इन बस्ती वालों से जाकर कहो, हमें जमीन की जरूरत है । ये इसे एक महीने के अन्दर खाली कर दें ।" नौरंगलाल ने कौतूहल की दृष्टि से ठाकुर साहब की ओर देखा, तो वे बोले, "देख रहे हो ना । इतने ही अर्से में हमारी कोठी से भी बड़ी-बड़ी कोठियाँ हमारे इर्द-गिर्द बन चुकी हैं । इस गन्दी बस्ती से हमारी कोठी की शान मारी गयी है । हम भी फ्लेट्स बनाकर उन्हें शरीफ आदमियों को किराये पर दे देंगे ।"

नौरंगलाल ने प्रशंसा की दृष्टि से ठाकुर साहब की ओर देखा। वह उनकी सूझबूझ का हमेशा से कायल रहा है। कभी कोई मौका आया और ठाकुर साहब चूक गये, ऐसा होते उसने आज तक न देखा था। उसने दौड़कर बस्ती वालों को ठाकुर साहब का हुक्म सुना दिया।

नौरंगलाल जब लौटा तो उससे साथ तीन आदमी और थे। एक लम्बा तगड़ा था, जिसकी घनी, दोनों सिरों पर नुकीली मूंछ थी। बाकी दो का कद मझोला और शरीर बलिष्ट था। उनके कपड़े मैले और जगह जगह पर उनके पैबन्द लगे होने से ठाकुर साहब ने सोचा वे हाथ-पैर जोड़ने आ रहे हैं। यह दृश्य उनके लिए कोई नया नहीं था। पर उन लोगों की चाल-ढाल में जो अपने को छोटा न समझने का भाव था, उससे उन्हें किंचित आश्चर्य हुआ।

तोनों आदमियों ने ठाकुर साहब के पैरों पर अपने सिर रखने के बजाय केवल खड़े खड़े बन्दगी की, तो वे जल उठे। उन्होंने तीक्ष्ण प्रश्न-सूचक दृष्टि नौरंगलाल पर डाली। नौरंगलाल, तीनों आदमियों पर क्रुद्ध दृष्टि डालकर लम्बे आदमी की ओर इशारा करके बोला, "सरकार, यह अच्छन मल्लाह है।" फिर दूसरे आदमियों की इशारा करके बोला, "ये ननकू और बुलाकी मछुए हैं। ये तीनों बस्ती वालों के मुखिया हैं। उन्हीं की तरफ से आये हैं। जमीन खाली नहीं करेंगे।"

ठाकुर साहब का चेहरा तमतमा उठा। इस समय अंग्रेजी राज होता और उनकी जमींदारी में कोई इतनी बदतमीजी करता, तो क्या वह सही-सलामत रह पाता। ऐसे बदतमीज की अब तक चमड़ी उधेड़ दी गयी होती और उसका सिर उनके पैरों पर होता। वे तड़पकर बोले, "खाली नहीं करेंगे। इनकी बाप की है जमीन!"

अच्छन के तेवरों पर बल पड़ गये। बायें हाथ से मूंछें उमेठता हुआ बोला, "बाबूजी, हमने कभी नहीं कहा कि हम जमीन खाली नहीं करेंगे। जमीन आपकी है। हम ऐसा कैसे कह सकते हैं।"

ठाकुर साहब ने अच्छन को मूँछ उमेठते देखा तो घृणा से मुँह विच-काते हुए अपना हाथ मूँछ से नीचे कर लिया और पहले की तरह तेज स्वर में बोले, "नहीं कहा है, तो जमीन खाली कर दो।"

अच्छन कुछ कुढ़कर बोला—"बाबूजी, खाली कैसे कर दें। हम छोटे आदमी हैं। यहीं नदी से मछलियाँ पकड़-पकड़ कर पेट पालते हैं। धोबी, खोम्चे वाले, मोची, मजदूर, सभी का कारबार …।"

ठाकुर साहब बीच ही में कड़ककर बोले—"मैंने तुमसे पूछा है, तुम धोबी-मोची क्या करते हो। मुझे यह बताओ तुम लोग जमीन कब खाली कर रहे हो।"

अच्छन भी चिढ़ गया। चुनौती के से स्वर में बोला—"इसके आस-पास कहीं और हमें बसा दीजिये तो हम यहाँ से चले जाएँ।"

ठाकुर साहब दाँत पीसते हुए बोले—"हाँ, आस पास जो कोठियाँ बनी हैं उनमें तुम्हीं लोगों को बसा दे। देखो, मैं तुम्हें एक महीने का वक्त देता हूँ। ऐसे खाली नहीं करोगे, तो ठोकर खाकर करोगे।"

अच्छन की मुद्रा कठोर हो गयी। क्रुद्ध स्वर में बोला—"हमें दूसरी जगह नहीं मिली, तो हम खाली नहीं करेंगे। आप बड़े आदमी हैं। हमें मिटाना चाहते हैं, तो मिटा दें।"

ठाकुर साहब ने अच्छन की ओर आँखे तरेरते हुए कहा—"मैंने तुम्हें पूरे एक महीने का वक्त दे दिया है। अच्छी तरह चले जाओगे तो ठीक है नहीं तो अपनी फजीहत कराकर जाना पड़ेगा।" ठाकुर साहब को अपनी जमींदारी के दिन याद आ गये। ये कमीन-जाहिल तब क्या ऐसे पेश आ सकते थे। सब जमाने की बलिहारी है।

ठाकुर साहब बन्द शेर की तरह घूरते हुए अच्छन, ननकू और बुलाकी को सुरक्षित जाते देखते रहे। उनकी आँखें मानों कह रही थीं, "फतेह सिंह मरा नहीं है। इस दुष्टता का दण्ड देने की अभी उसमें पर्याप्त शक्ति है।"

ठाकुर साहब ने गरजकर नौरंग लाल को अपना हुक्म सुनाया—"इन चींटियों के पर लग गये हैं। इन्हें जल्दी साफ कर दो।" ठाकुर साहब

क्या चाहते हैं, यह नौरंग लाल समझता था और किस तरह क्या करना होता है यह भी जानता था। उसने गाँव से अपने विश्वस्त आदमी बुला लिये।

ठाकुर साहब किसी समय भी चींटियों में भगदड़ पड़ने का इन्तजार कर रहे थे। लेकिन जब उन्हें पलटकर डंक मारते देखा, तो उनके विस्मय और क्रोध की सीमा न रही। फटे-चिथड़े पहने जाहिल बस्ती की रक्षा में इस तरह जुटे थे, मानो वह कोई किला हो। नौरंग लाल के हमले एक एक करके विफल होते जा रहे थे। बस्ती की झोपड़ियों में रात में एक-दो दिन ही रहस्यमय ढंग से आग लगी थी कि कड़ा पहरा पड़ जाने से उसका लगना बन्द हो गया। गुन्डों ने अच्छन को घेरा तो उसने अपने साथियों के साथ उन्हें इतना धुन दिया कि उनकी हालत देख ठाकुर साहब अवाक् रह गये। औरतों को आतंकित करने के लिए शोहदों ने दिन-दहाड़े ही बस्ती में उत्पात मचाना शुरू किया तो वहाँ भी ये पीट दिये गये। बाजी हर बार चींटियों के हाथ रहीं।

जाहिलों को ईंट का जवाब पत्थर से देते देख ठाकुर साहब गम्भीर सोच-विचार में पड़ गये। वे कुशल रणनीतिज्ञ थे और अपनी नीति में समयानुकूल परिवर्तन करने में बड़े पटु भी। उन्होंने शत्रु की स्थिति को सभी दृष्टियों से परखा और उसके कमजोर पहलू पर ही जबरदस्त हमला करने का निर्णय किया। नौरंग लाल को बुलाकर कहा—"ये रुपये की मार से ही मरेंगे। उसी के दलदल में इनके गले फंसा दो।"

नौरंग लाल नाचीज जाहिलों के हाथों अपनी पराजय से बहुत कुढ़ गया था। उनकी ताकत, उनका मुखिया अच्छन है, यह भी वह समझ चुका था। ठाकुर साहब का हुक्म मिलते ही उसने प्रत्येक किरायेदार पर अलग-अलग मुकदमा दायर कर दिया और कुछ समय का अन्तर देकर अच्छन पर फौजदारी के तीन मुकदमे और दायर कर दिये। चार सम्मन मिलते ही अच्छन चकराया। देहधारी शत्रु से टक्कर लेना वह जानता था। सम्मनों के पत्रों को वह देखता ही रह गया।

अपने वकील गाहक को चारों सम्मन दिखाकर उसने कहा—"बाबू जी, हम और कुछ नहीं चाहते। सिर्फ इन्साफ माँगते हैं।"

वकील उसका पुराना गाहक था। उसकी पूरी बातें सुन नकारात्मक ढंग से सिर हिलाते हुये बोला- "लेकिन जानते हो इन्साफ पैसा माँगता है। है तुम्हारे पास पैसा।"

"पैसा होता बाबूजी, तो इस झंझट में क्यों पड़ते। यहीं कहीं जमीन न खरीद लेते।"

"देखो, जमीन कानूनन ठाकुर साहब की है। देर-सबेर उन्हें मिलेगी ही। तुम उसे फौरन खाली कर दो और उनसे माफी माँगकर फौजदारी के मुकदमे वापस करा लो।"

अच्छन की आँखें आश्चर्य से फैल गयीं। "माफी माँग लूँ!"

"बड़ों से माफी मांगने में छोटों की कोई बेइज्जती नहीं हो जाती। नहीं तो तुम्हें जेल हो जाएगी।"

"जेल कैसे हो जाएगी, बाबूजी! मैंने तो कभी उनसे फौजदारी नहीं की।" अच्छन रोष भरे स्वर में बोला।

"नहीं की है, यह तुम्हें अपना वकील और गवाह ले जाकर अदालत में साबित करना होगा।"

अच्छन को ये बातें बड़ी विचित्र लग रही थीं। "बाबूजी, जो बात हुई नहीं, उसके लिए गवाह आएँगे कहाँ से।"

"जैसे गवाह ठाकुर साहब लायेंगे, वैसे तुम्हें भी लाने होंगे। सिखा-पढ़ाकर झूठे गवाह लाने होते हैं। लेकिन तुमसे यह सब नहीं होगा। बड़े खर्चे की मद है यह। तुम जमीन फौरन खाली कर दो और माफी माँग लो।

अच्छन बेबसी के स्वर में बोला—"फौरन खाली करके कहाँ चले जाएँ, बाबूजी।"

"मैंने जो सही बात है, सो तुम्हें बता दी। बाकी तुम समझ लो।"

माफी माँग लो ! जो ठोकरों से मार-मारकर कुचल रहा है, उसके पैर चूम लो ! अच्छन को वकील की बातों से तसल्ली नहीं हुई। कानून की उसने उतनी महिमा सुनी है। वह गरीबों के खिलाफ इतना बेरहम नहीं हो सकता। वह पहली पेशी के दिन अकेले ही अदालत जा पहुँचा। वह वहाँ सच्ची-सच्ची बातें कह देना चाहता था।

अच्छन ने नौरंगलाल के वकील की सभी बातों में हामी भरनी शुरू की, तो जज ने विस्मय से उसकी ओर देखकर पूछा, "तुम यह मानते हो कि तुम ठाकुर साहब की जमीन में किराये पर रह रहे हो और अब उनको उसकी जरूरत है।"

"हाँ, सरकार, लेकिन यहाँ से हटते ही हमारी रोजी खत्म हो जाएगी। और कोई जमीन हमारे पास नहीं है।"

जज और दूसरी ओर का वकील एक साथ हँस पड़े। जज ने अच्छन से फिर पूछा, "कानून में कहीं यह दिखा सकते हो कि अगर किसी जमीन से हटा दिये जाने पर तुम्हारी रोजी खत्म होती है तो वह तुम्हारी हो जाती है, या उसके एवज में तुम्हें कोई और जमीन दी जानी चाहिए।"

नौरंगलाल के होठों पर कुटिल मुस्कान बिखर गयी। अच्छन निरुत्तर हो गया। कानून में क्या होना चाहिए, यह तो वह बता सकता था। उसमें क्या है, यह वह क्या जाने। उसके खिलाफ डिग्री हो गयी।

अच्छन की रग-रग में विद्रोह की आग सुलग उठी। गरीब किसी चीज के हकदार ही नहीं हैं। ऐसे कानून को ही बदल देना चाहिए। उसे सेवक शर्मा की याद हो आयी। अंग्रेजों के खिलाफ वे लड़े हैं। इस कानून के खिलाफ भी वे जरूर लड़ेंगे। गरीबों के कितने हमदर्द हैं वे। बस्ती वालों को वे प्यार भी करते हैं। उन्हीं के वोटों से वे चुनाव जीते हैं। जब भी जरूरत हो, उनके हकों के लिए लड़ने का उन्होंने वादा भी किया है।

सेवक शर्मा ने अपने घर के बाहर सैकड़ों कंठों से अपनी जयजयकार सुनी तो हृदय में गुदगुदी होने लगी। पर इसका कारण न जानने से कुछ

आशंकित भी हो उठे। सेवक शर्मा हाल ही में चुनाव जीते थे। अब पाँच साल के लिए निश्चिन्त थे। फिर भी वे इस बात की सतर्कता वरतते रहते थे कि उनके चुनाव-बाड़े में कोई विरोधी न घुसने पाये। इसके लिए वे अमीर-गरीब सभी से मेल-जोल रखते थे। हो सका तो उनका काम कर दिया, नहीं तो वादे कर देते थे।

अच्छन की कुछ ही बातें सुनने पर सेवक शर्मा के व्यवहार-कुशल मन को यह ताड़ने में देर नहीं लगी कि गन्दी बस्ती थोड़े ही दिनों की मेहमान है और उसमें रहने वाले अब उनके चुनाव के काम के न रहेंगे। पर वे एक निपुण राजनीतिज्ञ थे। अच्छन के हठ पर उन्होंने बस्ती वालों के समक्ष अपने ओजस्वी भाषण में ठाकुर साहब पर पूरा नैतिक दबाव डालने का वादा किया, समाचार-पत्रों ने भी शर्मा जी का भाषण छापकर ठाकुर साहब से गरीब बस्ती वालों के लिए कहीं और इन्तजाम करने की जोरदार अपील की।

ठाकुर साहब ने नीच जहिलों का यह दांव देखा, तो मुस्करा दिये। शत्रु अब पूरी तौर पर उनके चंगुल में था वह आखिरी बार अपने परों को फड़फड़ा रहा था। काम उनका बन चुका था। अब मुफ्त की वाहवाही और नाम कमाने का मौका आया है, तो क्यों चूकें। उन्होंने अपना पेंच चला। सेवक शर्मा को निमंत्रित कर उन्होंने अपने स्वर में नम्रता लाने का प्रयास करते हुए कहा, "मेरे हृदय में इन बस्ती वालों के लिए कोई द्वेष नहीं है। एक आदमी के उकसाने पर ये हिंसा पर उतर आये। मुझे भी कानूनी कार्यवाही करनी पड़ी। उस आदमी के खिलाफ हिंसात्मक कार्यों के लिए मुकदमे चले हैं। उसको दण्ड न मिलना हिंसा को बढ़ावा देना होगा। बाकी लोग चाहें तो उनके बसने के लिए मैं पास ही बहड़ गाँव की कुछ जमीन खरीद दूँगा। आप ही को उनकी ओर से यह भूदान स्वीकार करना होगा।"

शर्मा जी ठाकुर साहब की उदारता देख गद्‌गद् हो गये। भला हिंसा के कार्यों के लिए दण्ड न देने की बात कौन कहेगा। ठाकुर साहब के

हृदय परिवर्तन को उन्होंने अपनी ही नैतिक विजय माना। इसकी सूचना उन्होंने तुरन्त ही समाचार पत्रों को दे दी और अच्छन को अपने पास बुलवाया।

अच्छन कुछ क्षणों तक सेवक शर्मा को घूरता हुआ अविश्वास की भावना से बोला, "बाबूजी हम शहर और आसपास के गाँवां का चप्पा-चप्पा छान चुके हैं। बहड़ गाँव की वंजर जमीन भी हम देख चुके हैं। उसे मिट्टी के मोल हम खुद ही ले सकते हैं। यहाँ से बारह मील दूर पैदल आने-जाने से हमारा कारबार उजड़ जाएगा।" फिर अपनी बात समझाते हुए बोला, "बाबूजी, हम तो इतना ही चाहते हैं, आप यह कानून बदलवा दें। वह हमारी तरफदारी करेगा तो ठाकुर साहब हमारा कुछ न बिगाड़ सकेंगे।"

सेवक शर्मा कुछ विरक्ति के स्वर में बोले, "कानून एक दिन में नहीं बदलते। थोड़ी-सी दूर या नजदीक से तुम्हें नहीं घबड़ाना चाहिए। मेरे ख्याल में तुम लोगों को बहड़ गांव चला जाना चाहिए। बाकी जो तुम ठीक समझो, करो।" और वे उठकर चले गये।

अच्छन फिर अकेला था। उसे अब किसी के पास नहीं जाना था। जिसको भी उसने अपना आसरा समझा, वह ठाकुर साहब का ही हिमायती निकला। वह धीरे-धीरे बस्ती की ओर लौटा। वहाँ चीख-पुकार की आवाजें सुन वह चौंका। नौरंग लाल और पुलिस वाले खड़े थे। रोते-चिल्लाते हुए मर्दों, औरतों और बच्चों को बाहर करके झोपड़ियाँ गिरायी जा रही थी। सामान बाहर बिखरा पड़ा था। अच्छन ने तेजी से कोठी की ओर देखा। कुछ ही दूरी पर ठाकुर साहब खुशी से नाचती हुई आँखों से यह सब देख रहे थे। उनके पीछे अदब से खड़े हुए पाँच-छह कारिन्दे थे। ठाकुर साहब बायें हाथ से मूँछ उमेठते जा रहे थे। अच्छन पर नजर पड़ते ही दाहिने हाथ से भी मूँछ उमेठने लगे।

अच्छन जल भुन गया। तीव्र इच्छा हुई कि झपट कर उनकी मूँछ को ही उखाड़ फेंके। क्रोध की घुटन से कदम स्वत: बढ़ने को हुए ही थे कि

सिर झटककर उसने अपने ऊपर काबू पा लिया। नतीजा क्या होगा। उसे वहीं लाठियों-घूँसों-लातों से ढेर कर दिया जायगा। पुलिस पकड़ ले जाएगी। बस्ती वाले और भी निस्सहाय हो जाएँगे। वे अब उसके चारों ओर चीख-पुकार मचाते हुए जमा भी होने लगे थे। क्या करे वह ? कहाँ जाय उन्हें साथ लेकर ?

अचानक जैसे उसे कोई राह दिख गयी हो, उसके चेहरे का रंग बदला। जबड़े कस गये। बस्ती वालों की ओर मुँह करके उन्हें गम्भीर आवाज में ललकारा, "चीखना बन्द करो। रो रो कर कोई नहीं सुनेगा हमारी बात। बोरा बिस्तरा लेकर चलो मेरे साथ। हमसे वादे करके हमारे बल पर जो सेवक शर्मा हमारा नेता बने हैं, चलो उन्हीं के हाते में। वहीं डेरा पड़ेगा। वादों से मुकरने नहीं देंगे उन्हें। अपने हकों के लिए लड़ेंगे हम। हमें खोना ही क्या है···खाने को है ही क्या···आओ, चलो···"

और बस्तीवालों का काफिला उसके पीछे जाते हुए ऐसा प्रतीत होता था मानो एक तेज लहर किनारा ढूँढने के लिए लपकी जा रही हो।

•

विजय

जमुना ने दरवाज़े से भीतर झांका। सदासुख पर नज़र पड़ते ही उसकी भौंहें तन गयीं। आंखों में तीव्र उलाहने और रोष का भाव उभर आया। विमल को साथ में बैठे देख वह ठिठक गयी। सदासुख ने मुस्कराते हुए तृप्त भाव से उसे देखा और फिर एक अर्थपूर्ण दृष्टि विमल पर डाली मानो कह रहा हो, "मैं जो कहता हूँ उसमें जरा भी शक हो, तो मेरी यह विजय भी देख लो।"

जमुना लौट गयी। मामूली मोटी धोती, पुरानी चप्पलों और हाथों की मोटी कांच की चूड़ियों के आवरण में उसका गोरा भरा हुआ गोल चेहरा बड़ी-बड़ी आँखें और पतले होंठ बरबस ही किसी झाड़ी में खिले गुलाब की याद करा देते थे। चेहरा गम्भीर होने पर भी उसमें बच्चे की सी मासूमियत साफ झलकती थी। लेकिन ठुड्डी की बनावट और भिचें हुए होठों से आन्तरिक दृढ़ता का आभास मिलता था।

विमल ने जिज्ञासा के भाव से पूछा, "यह लड़की इस तरह क्यों झांक रही थी। फिर हँसते हुए व्यंगात्मक स्वर में बोला, "क्या इस पर भी नज़र है। लेकिन इतना बता दूँ इससे ज़रा बचकर रहना। गरीब समझ कर गलतफहमी में न पड़ना। यह लड़की बड़ी विकट है।"

सदासुख को सर्वज्ञ भाव से मुस्कराता देख कुछ चिढ़कर, वह बोला, "परसों ही इसने हमारे मुहल्ले में सिन्हा जी के लड़के की सिट्टी-पिट्टी

भुला दी। बड़ा गुण्डा बना फिरता है। इसके सामने घिग्गी बँध गयी। पता नहीं इतनी हिम्मत इसमें आ कहाँ से गयी। सारा मुहल्ला दंग रह गया।"

सदासुख का कौतूहल जाग उठा, "निशानाथ को फटकार दिया। ठीक हुआ साले का, मुझसे यूनिवर्सिटी में कई बार उलझ चुका है। अब कोठी और कार की गर्मी ठण्डी पड़ गयी होगी।"

विमल को कुछ याद आया और वह हँस पड़ा। हँसते हुए बोला, "सिर्फ तहमद पहने अपना जिस्म पूरे मुहल्ले को दिखाता फिरता है। उसका ख्याल है औरतें उसके फूले हुए जिस्म पर लट्टू हो जाती हैं।" और फिर 'हो-'हो' कर हँसते हुए बोला, "औरतों के बारे में उसकी राय तुमसे सौ फीसदी मिलती है।"

सदासुख को विमल की यह हँसी खल गयी। शिकायत के लहजे में बोला, "उससे तुम मेरा मुकाबला कर रहे हो। वह तो गुण्डा है। मेरे बारे में तुमने कभी सुना कि मैंने किसी को छेड़ा या किसी का पीछा किया। मुझे जरूरत ही क्या है? मेरे पास तो वह गुर है कि लड़कियाँ खुद ही चली आती हैं। जिसे कहो वही चार दिन में यहाँ दौड़ी चली आयेगी।"

विमल ने इस प्रकार मुँह विचकाया मानो कहीं से एकाएक कोई तेज दुर्गन्ध उसकी नाक में घुस गयी हो। घृणा मिश्रित स्वर में बोला, "बेकार क्यों ऊल-जलूल बका करते हो।"

सदासुख के होठों पर कुटिल मुस्कान बिखर गयी। विमल की ओर तिरछी नज़र से देखते हुए बोला, "पढ़ने में भई तुम होशियार हो, लेकिन दुनियादारी के मामले में अब क्या कहूँ, यों ही हो। तुम्हीं जैसे लोगों को औरतें बुद्धू बनाती हैं। देखो, इतना समझ लो हर औरत की एक कीमत होती है। किसी की ज्यादा, किसी की कम। सिर्फ कीमत लगाना आये तो चुटकी में काम बना लो।"

"क्या वाहियात बकते हो? कैसा अजीब हाल है तुम्हारा? किसी

जवान औरत ने खाली देख भी दिया तो वह तुम पर मोहित हो गयी, मुस्करा दिया तो लट्टू हो गयी और जो कहीं कोई छिनाल या गरीब फँस गयी तो फिर क्या कहने हैं तुम्हारे, सारी दुनिया की औरतें तुम पर टूटी पड़ रही हैं। महाशय, जरा यह भी सोचो तुम्हारी-मेरी माँ-बहनें भी औरतें ही हैं। उनकी भी कीमतें लगेंगी, तो कैसा लगेगा तुम्हें ?" विमल के स्वर में खीझ थी।

विमल ने सोचा, माँ-बहन की बात सुन सदासुख झेंप जायेगा। लेकिन उसे निर्लज्ज स्वर में उत्तर देते देख वह स्तब्ध रह गया—"सुनने में बुरा लगेगा, लेकिन सच्चाई यही है कि उनकी भी कीमतें हैं। कोई लगाये, न लगाये, यह दूसरी बात है।"

विमल चिढ़कर बोला, "उस कार-बँगले वाले सिन्हा ने भी तो इस गरीब महरी की लड़की की कीमत ही लगाई थी। उस पर मार क्यों पड़ी।"

"उसने जो भी किया हो, मेरी कीमत पर वह राजी हो गयी है।"

"क्या ?" सदासुख के कथन और उनकी बेशर्मी पर विमल कुछ क्षणों तक आश्चर्यचकित रह गया—"इस विकट लड़की को भी तुमने फुसला लिया ?"

"तुम चाहो तो उसे यहीं बुलवाकर तुम्हारे सामने ही कबूल करवा दूँ।"

विमल को लगा मानो उनके सारे वदन पर किसी ने कीचड़ उड़ेल दिया हो। वितृष्णा के स्वर में बोला, "बस रहने दो भाई ! अगर तुम्हारी बात सही है तो दुनिया में कुछ भी पवित्र नहीं है। सब गन्दगी ही गन्दगी है। किसी को अपनी पत्नी पर भी भरोसा नहीं रखना चाहिये।"

सदासुख सिर ऊँचा करके एक विशेषज्ञ की तरह अधिकारपूर्वक बोला, "पत्नी पर काबू रखना जान लो तो वह तुम्हारी ही दासी बनकर रहेगी।"

विमल के आश्चर्य का पारावार नहीं रहा—"काबू रखना जानो ! कैसे रखोगे काबू ?"

विमल के अज्ञान पर तरस खाकर अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करते हुए सदासुख बोला, "तुम्हें एक बहुत सरल नुस्खा बता देता हूँ। बस इतना ही याद रखना कि पहली रात औरत के दिल में दहशत भर देनी है। फिर वह जिन्दगी भर तुम्हारे सामने कांपती रहेगी।"

"दहशत भर देनी है।" विमल को लगा जैसे कोई कसाई उसके सामने बैठा है।

सदासुख समझाते हुए बोला, "तुम मुर्ग, कबूतर को भी क्या हाथ लगा पाओगे। बस तुम सुहागरात को एक पोली तकिया पर एक तेज छूरा इस तरह भौंक देना जैसे किसी के भी छुरा भौंक देना तुम्हारे लिये रोजमर्रा का खेल हो। पत्नी जहाँ इतना समझ गयी जिन्दगी भर तुम्हारी चरणों की सेवा करती रहेगी। औरत से बराबरी करोगे तो हमेशा धोखा खाओगे।"

विमल उठ खड़ा हुआ। उसे मतली-सी मालूम देने लगी। सदासुख से बातें करते हुए उनका मन इसी तरह सदा ग्लानि से भर उठता था और संसार बड़ा ही कुरूप प्रतीत होने लगता था। वह जाते हुए खीझ भरे स्वर में बोला, "भई मैं स्त्री को माँ, बहन और जीवन-साथी के रूप में ही देखना चाहता हूँ। यह मेरी मूर्खता है, तो मैं मूर्ख ही रहना पसन्द करूँगा।...अच्छा, अब चलता हूँ। मुझे आज ही नौकरी पर चला जाना है।"

सदासुख चौंककर उठते हुए बोला, "अरे यार, बातों में मैं बिल्कुल ही भूल गया। अब तो यार तुम शिक्षा-विभाग में अफसर बनकर जा रहे हो। जब कभी आओ तो मिलना भी न भूल जाना भई!"

सदासुख ने दोनों हाथ बढ़ा दिये। विमल हाथ मिलाते हुए बोला, "सुना है तुम्हारी शादी ठहर रही है। उसमें बुलाओगे तो जरूर आऊँगा। सुहागरात का तुम्हारा...।"

"अरे यार, सबसे पहले तुम्हीं को बुलाऊँगा। आज तुम मेरी बातों पर यकीन नहीं करते। तब खुद ही देख लोगे, औरत पर कैसे शासन किया जाता है।"

विमल को दरवाजे तक पहुँचाकर सदासुख लौट आया और कुर्सी पर आराम से पैर फैलाकर अपना प्रिय प्रेम-गीत गुनगुनाने लगा। जमुना को अचानक सामने खड़ी देख उसे आश्चर्य हुआ। कब वह सामने आ खड़ी हुई, उसे पता ही न चला था। वह शान्त और गम्भीर चेहरे से उसे ही ताक रही थी। सदासुख नें दरवाजे की ओर नज़र दौड़ाई और फिर प्रेमातुर दृष्टि से जमुना को देखते हुए उसकी ओर बढ़ा।

जमुना तनकर खड़ी हो गयी और तीखे स्वर में बोली, "वहीं बैठे रहिये बाबू! आपने धोखा देने के लिये मुझे फुसलाया था।"

जमुना अपनी कठोर मुद्रा में सदासुख को आगे भी सुन्दर दिखाई दी। लेकिन उसकी क्रुद्ध दृष्टि के सामने और बढ़ने को उसकी हिम्मत नहीं हुई। कुर्सी पर बैठकर खिसियानी हँसी हँसते हुये बोला, "क्या कह रही हो तुम भी जमुना! जानती हो, आज तुम कितनी सुन्दर लग रही हो।"

ये बातें रहने दीजिये बाबू! आपने कभी अलग न करने का वादा किया था। जब भी मैंने शादी करने को कहा, आप आजकल पर टालते रहे।"

सदासुख चकराया। उसे भान हुआ कि कहीं कुछ गड़बड़ जरूर है। टोह लेने की दृष्टि से ठंडी साँस लेकर बोला, "जमुना, हमारा मिलन जीवन भर के लिये है। अलग करने का नाम भी तुमने कैसे ले लिया।"

सदासुख अपने भाव-प्रदर्शन का जमुना पर कोई प्रभाव न देख और भी चकराया। जमुना पहले की ही तरह क्रुद्ध दृष्टि से उसे देखते हुए बोली, "देखिए बाबू, मेरी माँ को ठाकुर ने धोका दिया और आप मुझे धोका दे रहे हैं। मैंने अपनी माँ की सब बातें तभी आपको बता दी थीं··· आपने कसमें खाकर वादा किया था····"

सदासुख बातचीत का रुख मोड़ देने के लिए व्यग्र हो उठा। वह डर रहा था कि कहीं कोई आकर उनकी बातें न सुन ले। लेकिन तत्काल कुछ भी सूझ न पाने से वह जमुना को एकटक ताकता ही रह गया। वह कहती गयी—"आपको मैंने बताया नहीं, मेरा मामा गुंडा है। सभी उनसे काँपते हैं। वे ठाकुर को काट देना चाहते थे। माँ ने रोक दिया।"

सदासुख कुछ आश्वस्त होकर अपने स्वर में भावोद्वेग का पुट लाने का प्रयत्न करते हुए बोला, "सच्चा प्रेम, प्रेमी का बाल बांका होते कभी नहीं देख सकता। तुम्हारी माँ से ठाकुर ने शादी भले नहीं की थी। लेकिन रखता उसे पत्नी की तरह था। तुम्हें भी उसने कुछ पढ़ाया-लिखाया था ही। बेचरा बीच ही में मर गया तो क्या करता। प्रेम तो तुम्हें भी अपनी माँ की तरह ही करना चाहिए।"

"देखिए बाबू! आपने बुरी से बुरी कसमें खायीं और ऐसे-ऐसे वादे किये कि मैं आपके कहने में आ गयी। अब मुझे दूध की मक्खी की तरह फेंककर शादी करना चाहते हैं।"

"शादी!" सदासुख सकपका गया।

"हाँ बाबू, मुझे भीतर से बिल्कुल पक्का मालूम हुआ है।"

सदासुख के चेहरे पर स्याही-फिर गयी। अपनी घबड़ाहट को छिपाने के लिए वह जोर से हँसते हुए इस तरह बोला जैसे जमुना ने जो बात कही उसका कोई महत्व नहीं था और वह बेकार ही इससे इतना परेशान थी—"शादी से प्रेम में क्या विघ्न पड़ेगा। तुम्हें-हमें रहने के लिए कोई मकान भी चाहिए या नहीं।"

"मकान!" जमुना आश्चर्य से सदासुख को देखती रह गयी।

"तुम जानती हो यह मकान मेरे बड़े सौतेले भाई का है। वे मुझे यहाँ से भगाना चाहते हैं। शादी से बस इतना ही होगा कि दहेज में एक छोटा-सा मकान मिल जायेगा। नौकरी भी मिल जायगी। तुम तो हमेशा मेरे साथ रहोगी।"

"नौकरानी बनकर! यही कसमें खायीं थीं आपने। ये ही आपके वादे थे···और अब कुछ ही महीनों में मैं कहीं मुँह दिखाने लायक भी न रह जाऊँगी।···तब क्या होगा मेरा?"

सदासुख को लगा उसके हृदय की धड़कन बन्द होने वाली है। मन में यही मनाता हुआ कि उसकी आशंका सही न निकले, उसने जमुना के

शरीर को ग़ौर से देखते हुए कांपते स्वर में पूछा, "तुम्हारा मतलब है... बच्चा...!"

जमुना की चुप्पी से अपनी आशंका की पुष्टि होते देख वह आगे न बोल पाया।

"आपकी शादी पक्की होने की बात सुनी तो मैंने मां को सब बता दिया। आपको अगर मकान की ही चिन्ता है तो मामा आपको दिलवा देंगे।"

"कौन? तुम्हारे मामा!" सदासुख घृणा से होठों को सिकोड़ते हुए बोला।

"हाँ, उनसे सभी काँपते हैं। बड़े-बड़े लोग उन्हें मानते हैं। अपने अहाते के पास के स्कूल में वे आपको नौकरी दिलवा देंगे।"

जमुना के भोलेपन पर सदासुख को एक क्षण के लिए तरस आ गया और आश्चर्य भी हुआ। वह सचमुच यही समझे बैठी है कि मैं उससे विवाह करूंगा। उसके चेहरे पर उसने दृष्टि डाली तो उस गुलाब जैसे खिले फूल की सुगन्ध अभी कुछ समय और सूंघते रहने की उसकी इच्छा हुई, लेकिन अब गुलाब के कांटे गड़ने लगे थे। इसलिए उसे फौरन दूर फेंकने में ही भला समझ वह बोला, "इस झंझट को दूर क्यों नहीं करवा देतीं। तुम लोगों के यहाँ तो यह सब चलता रहता है।"

जमुना का चेहरा तमतमा गया, "बाबू, तुम शादी करोगे या नहीं"

सदासुख अब इस मामले को खत्म कर देने की दृष्टि से सख्त स्वर में बोला, "देखो जमुना, इसे तुम अच्छी तरह समझ लो कि मैं तुमसे प्रेम सदा कर सकता हूँ, लेकिन शादी नहीं कर सकता।" फिर दरवाजे की ओर सतर्क दृष्टि से देखकर बोला, "अब तुम जाओ। कोई सुन लेगा तो क्या फायदा?"

जमुना कुछ क्षण के लिए अवाक् रह गयी। फिर देखते-देखते उसका चेहरा दहकती आग की तरह लाल हो गया और आँखों से लपटें सी निकलने लगी। दांत पीसते हुए बोली—"मेरे मामा अपने आदमियों के साथ बाहर आये हुए हैं। उन्होंने मुझे तुम्हें बाहर बुलाने को भेजा है।"

सदासुख परिस्थिति को गम्भीर होते देख डर गया। उसे सारा दोष जमुना का ही दिखायी देने लगा। पहले ही वता देती तो वह खुद ही कुछ इन्तजाम करवा देता। चौका-बासन करने वाली महरी की लड़की कैसी सती बनती है। उसे फांसने के लिए कैसे चरित्र दिखा रही है। क्रुद्ध स्वर में वोला, "तुम्हारी माँ का क्या ठाकुर से विवाह हुआ था,वह जैसे गांव चली गयी थी वैसे ही तुम भी चली जाओ। काम भी वन जायेगा और बात भी न खुलेगी। मुझी को पहले वता देती तो कोई दवा-ववा खिलवा देता। इस समय तुम्हें लेकर कहाँ जाऊँ ? रुपया-उपया कुछ चाहिए तो ले लो।"

वाहर कुछ कोलाहल होते सुन सदासुख चौंक पड़ा ! उसे ऐसा विदित हुआ जैसे कुछ आदमियों के बीच जवरदस्त झड़प हो रही है। उसने अपने बड़े भाई की तीखी आवाज और उस पर कुछ आदमियों का जोर से घुड़कना भी सुना। जमुना से उसने चले जाने के लिए मिन्नत की, लेकिन वह वहीं डटी रही। खिड़की के वाहर वह देखे, इसके पहले ही उसे कमरे में किसी के तेजी से घुसने की आहट सुनायी दी। उसके सौतेले भाई ने वहाँ जमुना को देखा तो वे इस तरह चीख उठे मानो आग से चटखने की आवाज़ निकल रही हो, "कमीने, हरामजादे यहाँ से फौरन अपना काला मुँह कर। जा, बाहर अपने गुण्डे ससुर के पास जा। अपना घर बिगाड़ने को ही मैंने तुझे पाला है। उधर शादी की वात चल रही है, इधर कीचड़ में मुँह धोये है। फौरन यहाँ से चली जा, नहीं तो धक्के मारकर बाहर कर दूँगा। तेरा इस घर में अव कुछ नहीं रहा है। तू घर गृहस्थी में रहने लायक नहीं है। घर में तीन-तीन जवान लड़कियाँ बैठी हैं। तू रहेगा, तो उन्हें कौन ले जायेगा।"

सदासुख सुन्न रह गया। बड़े भाई क्रोध से हाँफते हुए जमुना से बोले "कल से तूने या तेरी माँ ने इस घर में पैर रखा तो तुम दोनों की टांगें तोड़ दूँगा। अपने इस खसम को लेकर फौरन निकल जा।"

बड़े भाई को खूंखार जानवर की तरह अपनी ओर बढ़ते देख सदासुख ने इस समय चला जाना उचित समझा। सिर झुकाकर उठ खड़ा हुआ

और घर के बाहर चला गया। जमुना भी उसके पीछे-पीछे चली आयी।

विमल ने स्कूल के अहाते में प्रवेश किया ही था कि सदासुख को सामने देख उसकी बांछे खिल गयीं—"अरे सदासुख, तुम यहाँ कहाँ ? इस स्कूल का मुआइना करके मैं तुम्हारे यहाँ आने को सोच ही रहा था। चलो, तुम यहीं मिल गये। कहो मज़े में हो…?"

सदासुख ने गंभीर भाव में हाथ मिलाया और झेंपते हुए बोला, "इसी स्कूल में टीचर हूँ।"

"वाह, यह भी खूब रही। विमल खुश होकर बोला, "रहते तो बड़े भाई के घर में ही होगे।"

अबकी सदासुख का सिर और भी झुक गया। सामने की ओर दाहिने हाथ से इशारा करके दबे हुए स्वर में बोला—"वहीं अहाते में एक मकान में रहता हूँ। खाली घंटा होने से घर पर जा रहा था।"

"अरे वाह दोस्त तब तो शादी भी हो गयी होगी।"

सदासुख को चुप्पी साधे देख विमल जोर से हँसते हुए बोला, "अरे बोल भी यार ! शर्मा ऐसे रहे हो जैसे…।"

सदासुख बीच ही में खिसियानी आवाज़ में बोला "हाँ, हो गयी है।"

विमल उल्लास में ताली बजाते हुए बोल उठा, "वाह भई, बड़े छुपे रूस्तम निकले। नेवता देने का वादा भी भूल गये। अच्छा चलो यार इक्सपेकसन थोड़ी देर बाद होगा। पहले भाभी से मिल लूँ।"

सदासुख के कोई व्यग्रता प्रकट न करने पर भो विमल उसे दाहिने हाथ से पकड़कर, एक प्रकार से धकियाते हुए ले गया।

दरवाज़े पर ही जमुना थी। सदासुख ने धीमे-से उससे चाय बनाने को कहा। विमल ने सदासुख की ओर आश्चर्य से देखा। सदासुख की निगाहें नीची हो गयीं। मरी-सी आवाज़ में बोला, "इसी से विवाह हुआ है।"

विमल आन्तरिक खुशी से नाच उठा। मेज पर दाहिनी मुट्ठी ज़ोर

से मारकर बोला, "शाबाश दोस्त ! तुमने खूब हिम्मत दिखायी। हम सब तो जात-पाँत तोड़ने की मुँह जबानी शेखी बघारा करते थे, लेकिन तुमने कमाल करके दिखा दिया।" फिर एकाएक कुछ याद आते ही अपने संदेह को दूर करने के लिए उसने पूछा, "यार, तुममें इतनी कायापलट हो कैसे गयी ?"

सदासुख सिटपिटा गया। विमल अब उसका अफसर है। वह दूसरे दोस्तों और रिश्तेदारों से मिलेगा ही। उनसे उसे सभी कुछ मालूम हो जायगा। बल्कि नमक-मिर्च लगा-लगाकर, उसकी मखौल उड़ाते हुए, बातें उसे सुनायीं जायँगी। तब उसकी निगाह में वह बहुत ही गिर जायगा। खुद ही सब बातें बता देना बेहतर होगा, यह सोचकर वह धीरे-धीरे बोला, "सच्ची बात यह है शादी करने का मेरा इरादा नहीं था। कुछ परिस्थितियाँ ऐसी आ गयीं कि मुझे करनी पड़ीं।"

विमल को कौतूहल हुआ। उसे कई और बातें भी याद आने लगीं, वे परिस्थितियाँ क्या थीं भई ?"

सदासुख कुछ देर तक चुप रहा। किस प्रकार कहे, वह समझ नहीं पा रहा था। फिर इस तरह तेज़ी से बोला जैसे दुखते सिर पर रखे भारी बोझ को एकदम फेंककर हल्का अनुभव करना चाहता हो—"तुम्हें याद होगा तुमने जमुना को विकट लड़की बताया था।"

"हाँ हाँ, मुझे याद आ गया है। उस पर तुमने अपनी विजय की बात भी कही थी।"

"वह बाहर अपने गुण्डे मामा और उसके साथियों को छोड़ आयी थी। बड़े भाई आये तो उन्हें मुझे निकाल बाहर करने का मौका मिल गया। बाहर आया तो पहचानने वाले लोगों की भीड़ बढ़ी जा रही थी। अकेले में जमुना के मामा वगैरह को कुछ दे-दिलाकर समझाने-बुझाने की नीयत से यहाँ चला आया। बस तब से यहीं हूँ।"

"तब से यहीं हो ?" विमल विस्मय से उसको ताकता रह गया।

"उसका मामा इस इलाके के गुण्डों का सरदार है। बड़ा आतंक

है उसका। बड़े-बड़े लोगों में उसकी पहुँच है। दिनदहाड़े जिसे कहो पिटवा दे, मरवा दे, जिसकी कहो नाक कटवा दे। मेरे ही देखते-देखते एक महाजन की नाक कटवा दी। मुझे छुरा दिखाकर उसने एक रास्ता चुनने की धमकी दी, "शादी या मौत !" तुम्हीं बताओ मैं क्या करता ? शायद बाद में वह पकड़ा जाता, लेकिन मैं तो न रहता। पिता जी का मेरे नाम जमा किया हुआ सभी रुपया भी उसने जमुना के नाम करवा दिया। न करता तो प्राण जाते।"

विमल खिलखिलाकर इतनी ज़ोर से हँस पड़ा कि सदासुख बेहद खिसिया गया—"वाह यार, यह भी खूब रही। तुम्हें याद है तुमने पत्नी को काबू में रखने का मुझे क्या नुस्खा बताया था। सो यह कहो उन्होंने महाजन की नाक काटकर वही नुस्खा तुम्हारे ऊपर आजमा दिया। वाह भई वाह···।" विमल की हँसी रुकती न थी।

सदासुख से न रहा गया तो उलाहने के स्वर में बोला, "हँस लो भई ! तुम्हारे साथ यह सब गुज़रती तो जानते।"

विमल अपनी हँसी को किसी तरह रोककर बोला, "क्या गुज़री है तुम्हारे ऊपर। शादी ही तो हुई है।"

महरी के हाथ से चाय का प्याला लेकर विमल मुस्कराते हुए बोला, "भई अगले महीने मेरी भी शादी है। तुम्हें न्योता भेजूंगा। लेकिन यार डर लगता है कि कहीं पत्नी को काबू में न रख पाया तो क्या होगा। तुम कोई पक्का नुस्खा तो बताओगे ही। है न !" विमल जाने के लिए उठ खड़ा हुआ।

सदासुख ने हँसना चाहा, लेकिन दाँत निपोर कर रह गया। यह नुस्खा उसके गले का फंदा बन गया था।

प्रतिशोध

"अरे सुना तुमने, बिशन चौथी शादी कर लाया है।" पत्नी ने बेसेब्री से बाहर से ही खबर सुनायी। आँखों पर हँसी की चमक और होंठों पर व्यंगात्मक मुस्कान के साथ उसके चेहरे पर वही चिर-परिचित आत्म-संतोष और मेरे प्रति अत्यन्त आत्मीयता का भाव था मानो कह रही हो, "देखा, भगवान हम पर कितने कृपालु हैं। हमारी घर-गृहस्थी में कोई झंझट नहीं है।"

पत्नी के इस भाव से मेरा मन संत्रस्त हो उठता है। उसका सरल विश्वास कि उसने कोई पाप नहीं किया है, इसलिए उस पर कोई आपत्ति नहीं आ सकती, मेरे संशयी मन को आश्वस्त नहीं कर पाता। यह सही है कि किसी दूसरे की दुर्दशा देख अपनी निरापद स्थिति पर संतोष होता है, किन्तु पता नहीं क्यों बिशन का नाम सुनते ही मेरा मन ग्लानि-मिश्रित करुणा से भरकर जीवन के आकर्षण को ही धूमिल कर देता है।

मैं बिशन को बचपन से जानता हूँ। वह भला है या बुरा इसका सवाल नहीं है। जिन परिस्थितियों में कोई दूसरा अध्ययनशील भावुक व्यक्ति विद्रोह कर बैठता या दुनिया से विरक्त होकर प्राणों के प्रति मोह ही छोड़ देता, उनमें भी बिशन इतना अविचलित कैसे रह पाता है; मानो जो कुछ हो रहा है वह उतना ही स्वाभाविक है जितना कि खराब मौसम में कभी ठंड लग जाना या हल्का बुखार आ जाना। कभी भी आत्म-ग्लानि, अपनी हीन अवस्था के प्रति क्षोभ की भावना उनमें नहीं दिखायी देती।

बिशन के पहले व्याह में मैं भी शामिल हुआ था।

गर्मी की छुट्टियाँ थीं। मेरी तरह दूसरे लड़के भी छुट्टी मना रहे थे। सभी घूमने-घामने, चाय की दुकानों पर खाने-पीने, कैरम'शतरंज खेलने, गप्प लड़ाने के मूड में थे। बिशन ने चाय की दुकान खोल रखी थी। शाम को उसी की दुकान पर जमघट जमता। पहाड़ के उस छोटे से शहर में सभी या तो नाते-रिश्तेदार थे या पास-पड़ोसी या परिचित। बिशन की दुकान पर सामान कोई ज्यादा नहीं था। लेकिन जब उसके मुँह से हम दुकानदारी के लाभ सुनते, यानी किस तरह कढ़ाही वगैरह लेकर थोड़े-से बेसन, तेल, चाय की पत्ती, मिठाई आदि की मदद से आसानी से घर बैठे-बैठे काफी अच्छी आमदनी की जा सकती है, तो हमारा मन भी सचमुच पढ़ाई छोड़कर कहीं वैसी ही दुकान खोलने के लिए ललचा उठता। पर बड़े-बूढ़ों की निगाह में बिशन का कोई मूल्य न देख हमें ताज्जुब होता था। उनमें से किसी की भी रुचि बिशन की दुकान और उससे भी बढ़कर उसकी शादी के प्रति न थी।

बिशन बड़े-बूढ़ों से काफी चिढ़ गया था। उसका सारा दोष अपनी सोतेली माँ पर उमड़ता। "वहीं नहीं चाहतीं, इसीलिए दूसरे लोग भी चुप हैं। वह क्यों चाहने लगीं। सोचती होंगी यह बिना व्याहे रहेगा तो मकान-रुपया सब उनकी लड़की को मिल जायेगा।" बिशन की माँ बचपन में ही मर गयी थी। बाप भी जल्द ही मर गये थे। बिशन चंचल स्वभाव का था ही। बाप के मरते ही पढ़ना-लिखना सब छूट गया। बाप ने जहाँ पर नौकरी की थी, वहीं एक छोटा-सा मकान बना लिया था जिससे थोड़ा-सा किराया आता था और कुल दो-चार हजार रुपये वे छोड़ गये थे।

बिशन को सबसे बड़ी हमदर्द रधिया काकी मिली। कहीं किसी के यहाँ कोई भी छोटा-बड़ा काम हो, रधिया काकी को सबसे पहले पूछा जाता था। सब जगह न्योता पहुँचाना, चावल बीनना, आटा गूँथना, खटाई

बनाना, यह सब उनके जिम्मे रहता। इसकी एवज में जो कुछ मिलता उसी से अपना दर-गुजर करतीं।

घर-घर का रत्ती-रत्ती हाल काकी जानतीं और एक का हाल दूसरे घर में सुना कर अपने लिए चाय और अगर समाचार महत्वपूर्ण हुआ तो मिष्ठान्न भी सुनिश्चित कर लेतीं। वे जितना काम करने में तेज थीं उतनी ही जबान से भी। सब उन्हें जितना दुलराते थे, उतना ही डरते थे।

विशन की व्याह करने की इच्छा उन्हें मालूम हुई तो उन्होंने उसकी दुकान पर, जब ग्राहकों की भीड़ न रहती, उसे सान्त्वना देने के लिए जाना शुरू कर दिया। पकौड़ी, चाय और कभी-कभी मिठाई से विशन उनका सत्कार करता। बिशन के व्याह के लिए कोई चिन्ता ही नहीं करता, यह बात काकी को बड़ी खटकी। पुरुष जात? उसके लिए लड़की की क्या कमी है! सारा दोष उन्हें भी उसकी सोतेली माँ का लगा। सौतेली माँ है तो क्या! है तो उसकी माँ की जगह पर। उसका व्याह ठहराना क्या उनका फर्ज नहीं? वे आगे न बढ़ेंगी तो दूसरा क्यों बीच में पड़ेगा। उन्होंने बिशन के मन की व्यथा, उसकी सोतेली माँ का निर्लज्ज स्वार्थ और अपने मंतव्य का प्रचार घर-घर करना शुरू कर दिया।

सोतेली मां ने परेशान होकर विशन की शादी के लिए दौड़-धूप-खुशामद शुरू की। पास के गांव के एक गरीब पंडित जी अपनी लड़की व्याहने के लिए इस शर्त पर तैयार हुए कि वर को उनके रिश्तेदार पहले देखेंगे। बचपन में कभी बिशन के एक पैर के घुटने के पीछे का भाग आग से जल गया था और उसका काफी बड़ा दाग रह गया था। लेकिन लड़की-वालों तक शायद यह खबर पहुँची थी कि विशन के पैर में नासूर है। इसीलिए उन्होंने वर को दिखवाने की शर्त रखी। लेकिन बिशन बिना किसी हिचक के परीक्षा के लिए राजी हो गया। औरत मर्दों की महफिल में बिशन का पैर देखा गया और उसकी शादी तय हो जाने का ऐलान हो गया।

किसी को अपने व्याह में उत्साह दिखाते न देख बिशन को सारा काम खुद ही संभालना पड़ा। उसने शहर की सीमा तक ही नहीं, जैसा कि आम तौर पर और शादी वाले करते थे, देहात में लड़की वालों के घर तक बैन्डबाजा ले जाने का इन्तजाम किया। स्वभाव का वह ऐसा ही हठीला था।

बरातियों में सबसे आगे बाजे वाले, फिर बिशन की पालकी और पीछे ज्यादातर लड़के थे जो पिकनिक के मूड में बहुत खुश नजर आ रहे थे। बड़े-बूढ़ों का अपना अलग गुट था जो लड़कों की खुशी को देखकर मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। आकाश में बादल आ-जा रहे थे जिससे पहाड़ की धूप में चलना आसान हो जाता था।

एक जगह पड़ाव डालकर चाय पी गयी। उसके बाद ज्यों ही ढलान पर गांव की ओर बारात उतरी हवा नम और ठंडी मालूम देने लगी और बादल आकाश में घटाटोप छाने लगे। संध्या होने में काफी देर थी। फिर भी हल्का-हल्का अंधेरा मालूम देने लगा था। बारातियों ने चाल तेज की ताकि कहीं पानी बरसा तो वे उसके पहले ही लड़की वालों के घर पहुँच जायें। लेकिन बादलों के रंग-ढंग देख उनकी उम्मीद कम होती जा रही थी। तभी बादल मानो फट पड़े। सभी सुध-बुध खोकर छाया की खोज में जिधर बन पड़ा उधर ही दौड़े। लेकिन लम्बे-लम्बे छायारहित चीड़ के पेड़ों के अलावा कहीं कुछ नहीं था।

जब मैं भी बिल्कुल ही भीग गया तो निश्चिन्त होकर सड़क पर आ गया। और भी कई लड़के आ गये। हवा तेज चलने से बदन कांपने लगा। बाजे वाले और बिशन का कहीं पता न था। हम तेजी से आगे बढ़े तो कुछ ही दूरी पर बड़ी उम्र के लोग बिशन की पालकी के मजदूरों को डाँटते हुए दिखायी दिये। ये मजदूर भी शरण की खोज में बेतहाशा भागे होंगे और उसी हड़बड़ में बिशन का मुकुट पीछे कहीं गिर गया था। पानी जितनी तेजी से आया था उतनी जल्दी ही अब थमने लगा था। कुछ लड़के दौड़कर पीछे की ओर गये और दौड़ते हुए रास्ते में पड़ा हुआ मुकुट

ले आये। उसमें अब पट्ठे के ऊपर केवल चार सीखें ऊपर की ओर निकली हुई रह गयीं थीं। वही मुकुट बिशन ने अनासक्त भाव से पहन लिया। उसके चेहरे पर प्रकृति, भगवान, स्वयं अपने या किसी दूसरे के प्रति कोई शिकायत का भाव न था। पहाड़ में इस मौसम में ऐसी अचानक बारिश कभी-कभी होती है, लेकिन बहुत ही कम। सो उसी के ब्याह में ऐसी जगह पर क्यों हुई, जहाँ कोई शरण ही न थी, इसका उसे कोई गिला न था।

बारात का सारा मजा किरकिरा हो गया था। अब किसी तरह बारातियों को बटोरकर लड़कीवालों के यहाँ पहुँचने की समस्या थी ताकि आग का बन्दोबस्त करके कपड़े सुखाये जा सकें। बाजे वालों का अब भी कहीं पता नहीं चल पा रहा था। तभी नीचे घाटी में कहीं से तुरही की आवाज सुनायी दी। बारात कई भागों में बंट गयी थी और उसका जुट पाना संभव न देख हम लोग बिशन को लेकर तेजी से गांव की ओर चल दिये।

बिशन का ब्याह निवटा कर हम अपनी-अपनी युनिवर्सिटी को चले गये।

मुझे नौकरी मिली, पदोन्नति हुई और मेरा विवाह हो गया।

एक सुबह मैं बरामदे में पत्नी और बच्चों के साथ चाय पी रहा था। मण्डी से, जो पास ही पड़ती थी, कुछ फल लाने की सोच ही रहा था कि सामने से बिशन को आता देख बड़ा आश्चर्य हुआ। सोचा किसी काम से इस शहर में आया होगा। पत्नी से उसके लिए चाय लाने को कहकर कौतूहल शान्त करने के लिए पूछा, 'कब आये यहाँ तुम ?'

"मुझे यहीं म्युनिसिपेलिटी में नौकरी मिल गयी है।"

"अच्छा !' मैंने विस्मय के स्वर में पूछा, 'ठहरे कहाँ हो ?"

"यहीं पास ही में एक मकान मिल गया है।"

"बड़े खुशकिस्मत हो। लोग तो..."

"फुरसत हो तो चलो देख लो। दो कदम पर तो है।"

"अच्छा ! अभी देख लेते हैं ।' फिर याद आते ही पूछा, 'बच्चों को साथ लाये हो !"

"पत्नी तो पहले ही नहीं रही । तुमने सुना ही होगा । तीन बच्चे हुए थे, वे भी न रहे ।"

मेरा मन विरक्ति से भर गया । पहली पत्नी बच्चा जनते ही मर गयी थी, यह तो सुना था । दूसरी शादी उसने कर ली है, यह भी मालूम हुआ था । लेकिन वे भी अब कोई न रहे । उसकी बातों में, चेहरे की मुद्रा में, बोलने के ढंग में ऐसी विचित्र जमी हुई ठंडक-सी थी कि उससे कुछ और पूछने या उससे कुछ कहने की इच्छा ही नहीं हुई ।

मैं मण्डी जाने के लिए उठ खड़ा हुआ । उसके मकान पर जाने का उत्साह न रहा था । लेकिन चाय का आखिरी घूंट जल्द घुटककर वह हठ करने लगा तो, बुरा न मान जाये, यह सोचकर साथ जाना ही पड़ा ।

किसी ठेकेदार ने शहर में मकानों की रोजमर्रा की बढ़ती हुई माँग देखकर अपनी गाय भैसों के रहने के कमरों को ही उनके दरवाजों पर टीन और चाय के बक्सों की लकड़ियाँ ठोंक-ठोंककर दो पाये मनुष्य के बेटों को किराये उठा दिया था । बाहर उनके लिए एक ही नल और एक ही शौचालय था । बिशन का कमरा एक ईंट की दीवार पर कुछ पुराने टीन छाकर नया तैयार किया हुआ था । उसकी फर्श पर उस लू के मौसम में भी सीलन थी । मैंने कई बार उस कमरे की ओर और फिर बिशन के चेहरे को देखा । वही धनासक्त भाव । क्षोभ, क्रोध या असंतोष की किसी भी प्रकार की भावना उसके चेहरे पर अंकित नहीं थी ।

और आज बिशन उसी कमरे में अपनी तीसरी पत्नी को ले आया था ।

"तुम इतने गंभीर क्यों हो गये हो ।' पत्नी की आवाज मेरे कान में पड़ी तो मैं चौंका । 'तुमने तो बिशन की शादी ठहराई नहीं है । फिर तुम्हें इतना दुखी होने की क्या जरूरत है ।'

'यह तो बिशन की तीसरी शादी है । तुम चौथी क्यों कह रही हो ।

'तीसरी शादी को चौथी कहा जाता है। नहीं तो असगुन माना जाता है।'

'बिशन के लिए सगुन-असगुन ! मुझे मन ही मन हँसी आई।' क्या वह लड़की बिल्कुल ही अनाथ है ?'

'प्रेमी की माँ बता रही थीं उसके माँ-बाप नहीं हैं। चाचा-चाची बहुत गरीब हैं।'

'उन्हें कैसे मालूम उसके बारे में ?'

'शादी के वक्त वे वहीं थीं। उसका मायका उसी गाँव में है।'

'वे बिशन के बारे में तो कुछ जानती न होंगी ?'

'ना, उन्हें बड़ा ताज्जुब हुआ जब मैंने कहा वह बहुत छोटा नौकर है। वहाँ तो यही खबर फैली थी कि वर उम्र का कुछ ज्यादा है, लेकिन बड़ा अफसर है।'

'लड़की वालों ने बिना पूछगछ किये सब मान लिया।'

'न मानकर क्या करते। दूर देहात के रहने वाले। बेहद गरीबी। इस शहर में गजाधर पंडित के सिवाय उनका कौन था जिससे पूछगछ करते।···चाचा-चाची भी अपने सिर का भार उतारना चाहते होंगे। एक जवान लड़की को कहाँ तक घर में रखे रहते। असल में सारा दोष गरीबी का है।'

'सो तो है। लेकिन यह गजाधर क्यों जानबूझकर पाप कमाता है। इसने इसी तरह कई और लड़कियों की भी जिन्दगी नष्ट की है। बीच में शायद रुपया खाता है।···शादी में कौन कौन गया था। प्रेमी की माँ ने कुछ बताया। यहाँ तो किसी को खबर भी न हुई।'

पत्नी को हँसते देख मुझे आश्चर्यमिश्रित कुतूहल हुआ। 'गजाधर पंडित और पालकी के दो मजदूरों को मिलाकर कुल तीन बाराती थे।'

'बाजा-वाजा कुछ नहीं !'

'नहीं कुछ नहीं।'

'तब तो लड़की वालों के यहाँ तहलका मचा होगा।'

'गजाधर पंडित ने वहाँ पहुँचते ही गाँव वालों को समझाया कि बिशन चाहते तो हजार बाराती और दर्जन भर बैण्ड बाजे वालों को ला सकते थे। लेकिन उन्हें अपनी पहली पत्नियों का इतना दुख था कि वे न तो एक बाराती को ले जाने को तैयार थे, न कोई बाजा ही। मुश्किल से तो वे ब्याह को राजी हुए।''

'तभी यह गजाधर बिना किसी को कानोंकान खबर दिये बिशन को उठा ले गया। नहीं तो पोल न खुल जाती···यह बिशन क्या कभी भी कुछ सोचता-समझता न होगा ?'

'जो भी हो, लड़की वाले होंगे जरूर बड़े गरीब। बिशन की बहू के बाल मैंने देखे। साधुओं की जटा की तरह हैं। कभी साबुन से धोये हो न गये होंगे। लेकिन उसकी आँखें देख मुझे डर जैसा लगा।''

'क्यों, क्या आँखें खराब हैं ?'

'नहीं, पथराई-सा आँखें जब वह घुमाती है तो डरावनी लगती है। वैसे प्रेमो की माँ कहती हैं, बड़ी गुस्सेल है। गजाधर ने बात संभाल ली, नहीं तो चाचा-चाची बेहद घबड़ा गये थे कि वैसी बारात देख कहीं सिर फोड़ कर उनको मद न कर दे।'

'प्रेमो की माँ ने सच ही कहा होगा।'

'तुम भी अभी देख लेना। बिशन उसे लेकर यहीं आ रहा है। मैं तुम्हें बताने पहले ही चली आयी।'

बाहर जूतों की आहट सुनायी दी। बिशन पत्नी के साथ भीतर आया तो भामा के नाते मैंने उन्हें कुछ झुककर प्रणाम किया। शिष्टाचार के नाते पूछा, 'तुमने तो न्योता भी न दिया बिशन।'

'गजाधर ने किसी से कुछ कहने का वक्त न दिया।'

''खैर, चलो, तुम्हारी गृहस्थी बस गयी।''

पत्नी की बात मेरे दिमाग में घूम रही थी ! मैंने मौका पाकर बिशन की बहू की आँखों को गौर से देखा। उनमें मुझे भी दहशत-सी भरी हुई

प्रतीत हुई। कुछ ऐसा लगा जैसे उनमें असीम भय और क्रोध एक साथ ही डेरा डाल चुके हैं।'

बिशन मेरे साथ बैठा रहा। पत्नी उसकी बहू को लेकर भीतर चली गयी। बिशन ने फिर वही न जाने कितनी बार दुहरायी हुई बात शुरू की। सौतेली माँ अगर पिता का छोड़ा रुपया उसे दे दे तो वह फिर व्यवसाय शुरू कर दे। अबकी उसने घर घर साबुन बेचकर उससे होने वाला लाभ विस्तारपूर्वक समझाया। लेकिन अपनी सौतेली माँ की अक्ल को वह क्या करे, जिनकी समझ में वह सब आ ही न रहा था।

बिशन ने अपनी पुरानी आदत के मुताबिक कुछ रुपये माँगे। मैंने कुछ देकर पीछा छुड़ाया। चाहे उसी की गलतियों के कारण हो, उसको रुपयों की सचमुच तंगी रहती थी। उसको थोड़ा-बहुत दे दिलाकर और यह सोचकर कि इससे उसको कुछ-न-कुछ राहत मिलेगी मेरे मन का भार अनायास ही कुछ हल्का होता हुआ प्रतीत होता था। अपने मन की इस दशा पर कभी कभी मुझे स्वयं बड़ा आश्चर्य होता है। बिशन की मदद करना मेरा कोई कर्त्तव्य नहीं था। फिर भी मैं क्यों उसके सामने अपने को एक प्रकार का नैतिक अपराधी समझने लगता था। कभी-कभी ठंडे दिमाग से सोचता हूँ तो ताज्जुब होता है यह देखकर कि अपना मन ही किसी आदमी के लिए कितना बड़ा पहेली-सा हो जाता है।

पत्नी चाय देकर जाते हुए बोली, 'देवरानी यहाँ आते हुए शर्मा रही है। मैंने वहीं चाय पिला दी है।'

बिशन अपनी बहू को लेकर चला गया तो पत्नी अपनी आँखों से रहस्य का बोध कराते हुए अत्यन्त आत्मीयता के स्वर में बोली, "बिशन की बहू हर चीज को ऐसे देख रही थी जैसे बड़ा चमत्कार देख रही हो। रेडियो से आवाज निकलते ही वह बड़ी देर तक उसे घूरती रही। बेचारी बज्र देहात की लगती है।"

मैं घर-दफ्तर के काम और दौरों में व्यस्त हो गया। पत्नी घर-गृहस्थी और बच्चों में रम गयी। बिशन का ध्यान किसी को न रहा। सच तो यह

है कि सब कोई बिशन से दूर ही रहते थे। कब क्या माँग बैठे। ना कहने पर बेकार ही मन खट्टा हो जाता। एक दिन अचानक बिशन आया। वह भी कोई खास काम होने पर ही आता था। बोला, "चन्दन, वाईफ को आज अस्पताल से ले आया।"

"क्यों, क्या तबियत खराब हो गयी थी। तुमने बताया भी नहीं।" मैंने आश्चर्य में भरकर पूछा।

"ना, ना, माँ यहाँ है नहीं, इसीलिए..."

"बच्चा होने वाला था क्या? तुम न आ पाये तो कम से कम कहलवा तो देते।"

"लड़का हुआ है। लेकिन चन्दन वाईफ को बुखार है।"

"डाक्टर क्या बताता है।"

"खून की कमी।"

"तो डाक्टर से पूछ के दवा-टानिक दो।" कहने को मैं कह गया, लेकिन तभी ख्याल आया कि वह यह सब कहाँ से कर पायेगा।

"कैसे दूँ चन्दन। माँ तो ऐन मौके पर चली गयी हैं। मैंने दफ्तर से कुछ कर्ज ले लिया है। सो सब कट-कटाकर साठ रुपये मिलते हैं। वाईफ की एक आँख से पानी बहुत निकलता रहता है। नजर भी कम हो गयी है।"

कोई क्या राय दे बिशन को। फिर भी कहा, "आँखें दिखा दो अस्पताल में।"

"डाक्टर चश्मा पहनने को कहता है। चश्मे के पैसे कहाँ से लाऊँ।"

मेरा मन खिन्न हो गया। इस आदमी को अपने किये पर कुछ भी तो अफसोस नहीं है। दो पत्नियाँ मरीं, न जाने कितने बच्चे मरे, अधेड़ उम्र में तीसरी शादी कर लाया और उसका भी निर्वाह करने के लिए इसके पास पैसे नहीं है। लेकिन इसके लिए वह सब सामान्य-सी बातें हैं। अगर मैं कह दूँ, चश्मे का रुपया मैं दे दूँगा, तो और भी हजारों जरूरतें पड़ेंगी। कहाँ-कहाँ तक कोई हाथ बटा पायेगा। मैं चुप रहा। उसने भी कुछ नहीं माँगा और चला गया।

मालूम हो जाने पर पत्नी कुशल-क्षेम पूछकर आयी तो विषादपूर्ण स्वर में बोली ? विशन की बहू को बुखार तो नहीं है लेकिन वह दुबली बहुत हो गयी है । बच्चा सूखकर काँटा हो रहा है ।

दूसरे दिन विशन को आया देख पत्नी भी कोई विशेष समाचार सुनने की आशा में चली आयीं । जब विशन ने बताया कि बच्चे को बेहद दस्त आ रहे हैं, तो उसका चेहरा आतंक से मुरझा-सा गया । खाना और दूध वही दे आयी थी । अब शायद यह सोचकर बहुत डर गयी थी कि कहीं बच्चे की मृत्यु का कारण उसे ही न समझा जाये । उसी वक्त खुद डाक्टर को लेकर गयी और तब तक जाती रही जब तक कि वह पहले की हालत में नहीं पहुँच गया । फिर मेरे सामने आकर कान पकड़ते हुए इस तरह बोली जैसे कोई आदमी डूबते-डूबते बचकर किनारे आ गया हो, "भला करके भी कभी कभी कितना बुरा हो जाता है । उस बच्चे को दूध पचाने की ताकत कहाँ है । अब न भेजूंगी ।"

लेकिन अगले दिन सुबह ही बिशन की बहू बच्चे को अपने घर पर ही छोड़कर आ गयी । उसे खाना दिया गया तो उसने खा लिया । फिर एक ही जगह पर बिना बोले-चाले इस तरह बैठ गयी जैसे उठने का नाम ही न लेना चाहती हो । कोई कुछ पूछता तो ऐसे देखती जैसे किसी अजीब अन-देखे प्राणी को ओर ताक रही हो । उसके बगल के मकान की एक औरत आकर उस पर बुरी तरह बरस पड़ी, "तुम यहाँ आराम करने बैठी हो । वहाँ बच्चा रो-रोकर मरा जा रहा है । बच्चा नहीं चाहिए था तो पैदा क्यों किया । इस वक्त तो हमने उसे दूध-वूध पिला दिया है । अब हमें अपनी भी गृहस्थी देखनी है । उसे कुछ हुआ तो तुम जानना ।" पत्नी भी डर गयी तो उसने भी बिशन की बहू को झिड़का । वह चुपचाप उठी और चली गयी । इसके बाद उसने हमारे यहाँ आना ही बन्द कर दिया ।

मैं दौरे से लौटकर बैठा ही था कि विशन आ गया । उससे उसके घर की कुशल पूछते भी डर लगने लगा था । फिर भी शिष्टाचार-वश साहस करके पूछा, "क्यों बिशन घर में सब ठीक है ।"

"चन्दन, वाईफ तो बिल्कुल डायन हो गयी। उसने बच्चे को मार डाला।"

मेरे सारे शरीर में रोमांच हो आया। लेकिन बिशन के स्वर में किसी वेदना या व्यथा का कोई आभास न था, जैसे कोई रोजमर्रा की बातें कह रहा हो। पत्नी भी मेरे और बिशन के सामने चाय के प्याले रखकर खड़ी हो गयी।"

"क्यों, कैसे ?" मैंने सहमे स्वर में पूछा।

"गरम तवे में उसने बच्चे को रख दिया।"

"हैं !" पत्नी चीख-सी पड़ी। "उसने ऐसा क्यों किया।"

"मेरी नजर न पड़ती तो पता नहीं वह क्या करती। मैंने बच्चे को छीनकर उसे डांटा तो बोली, बच्चे को जरा सेक रही हूँ। इसे जाड़ा लग रहा होगा।"

"फिर !" पत्नी सांस रोककर पूछा।

"बच्चे के फफोले पड़ गये थे। जो दवा पानी हो सकती थी, वह की। लेकिन वह मर गया।"

"तुमने खबर भी न दी।" मैंने उलाहने के स्वर में पूछा।

"क्या खबर देता। अगल-बगल के लोगों ने सारा इन्तजाम कर दिया। लेकिन अब तो वह और भी भयानक हो गयी है।"

"वह पागल हो गयी है, बिशन।",

"नहीं।" बिशन बीच ही में टोककर बोला। "बिल्कुल बनी हुई है। सुबह घर छोड़कर दूसरों के यहाँ चली जाती है और शाम को मेरे दफ्तर से आने के पहले ही खाना बनाकर और खुद खाकर जूठे बर्तन मेरे लिए छोड़ देती है।"

"अजीब बात है।" अनायास ही पत्नी कह उठी।

"अजीब कुछ नहीं है। वह मुझे मार डालना चाहती है। शाम को बर्तन मांजकर अपने लिए खाना बनाता हूँ और फिर बर्तन मांजकर तब सोता हूँ। वह समझती क्या है, मैं भी बदला लूंगा।"

"ऐसी बात न कहो बिशन। किसी तरह उसे समझाने-बुझाने की कोशिश करो।" मैंने उसे शान्त करने की नीयत से कहा। वह मुझे बड़ा विचित्र प्राणी जान पड़ने लगा। कोई दूसरा आदमी क्या ऐसी घटनाओं का इतने सहज ढंग से वर्णन कर पाता, जिस तरह वह कर गया। दूसरे लोग उसके बारे में क्या सोचेंगे, इसकी उसे कतई फिक्र नहीं थी। हैरत की बात थी कि उसे अपनी कोई गलती ही नहीं दिखाई दे रही थी।

'अब उसे मकान बदलने की जिद्द है। सुबह खाना खाकर घर से चल देती है। शाम को मेरे दफ्तर से लौटने के पहले ही खाना खाकर सो जाती है। पास-पड़ोस में कहीं बाजा बजता है तो दरवाजे बन्द कर देती है, कहीं से रेडियो की आवाज आयी तो दरवाजा पीटने लगती है।"

"क्यों?" मैं पूछ तो गया, लेकिन तभी मुझे ख्याल आया कि बिशन ने अपने को अफसर बताकर यह शादी की है। हो सकता है दूसरों को देखकर उसकी पत्नी को भी अच्छे मकान-रेडियो की चाह हो। यहाँ खाने के ही लाले पड़े हैं, तो पागलपन में इस अधेड़ बूढ़े के प्रति अपने प्रतिशोध की भावना को इस प्रकार व्यक्त कर रही हो। लेकिन यह सब बिशन से कैसे कहता। कहता भी तो क्या वह समझ पाता।

"क्यों क्या, साली सबसे जल मरती है। अपने को पता नहीं क्या समझ रखा है।"

"एक क्वार्टर कहो तो मैं तुम्हें दिलवा दूं। नये सरकारी क्वार्टर हैं। किराया ज्याद नहीं है। लेकिन कुछ दूर जरूर होगा।"

"वो नदी पार के क्वार्टर।"

"हाँ।"

"कर दो चन्दन। वहीं चला जाऊँगा। किसी तरह यह शान्त तो हो।"

"लेकिन क्वार्टर मिलते-मिलते महीना दो महीना तो लग ही जायेगा।"

"जब भी मिले चन्दन। किसी तरह मिल जाये।"

बिशन चला गया और अपने पीछे खिन्नता और अवसाद की छाया छोड़ गया।

पत्नी के जिद्द करने पर कुछ ही दिनों बाद दौरे पर जाने के पहले बिशन से मिलने गया। उसकी बहू दरवाजे पर खड़ी जमीन पर शून्य दृष्टि से पता नहीं क्या देख रही थी। मैंने पूछा, "बिशन घर पर है।" तो वह आँखें उठाकर मुझे इस तरह देखती रही जैसे मैं कोई नितान्त अपरिचित हूँ।

कुछ असमंजस में पड़कर मैंने पूछा, "भाभी आपने मुझे पहचाना नहीं।" उन्होंने सिर हिलाकर न पहचानने का संकेत किया। तभी बिशन हड़बड़ाकर भीतर से बाहर आ गया। "आओ चन्दन, भीतर बैठो। यह पागल बनकर मुझ से दुश्मनी निभा रही है। खाते वक्त पागल नहीं रहती। अब ये इस कमरे के भीतर रह ही नहीं सकती। इनको बंगला चाहिए, चन्दन, बंगला।"

मुझे बड़ी असुविधा होने लगी। बिशन मुझे पकड़कर कमरे में ले गया तो उसी की चारपाई पर बैठ गया। उसने अपनी पत्नी को चाय बनाने का आदेश दिया। वह फौरन एक बड़ा गिलास भरकर दे गयी। पता नहीं वह साबुन का पानी था या क्या था। मैं बड़े पशोपेश में पड़ गया कि कहीं वह एक गिलास भरकर मुझे भी न दे जाये।

"बिशन बौखला उठा, यह चाय है!" और उसने चाय वहीं गिरा दी। मैं वहाँ से भाग निकलने के लिए तड़पने लगा। कुछ न सूझा तो कहा, "बिशन, मुझे अभी थोड़ी ही देर में दौरे पर चले जाना है। अच्छा, अब चलूँ। तुम्हारे मकान का इन्तजाम लौटते ही कर दूँगा।"

दौरे से आकर चाय पी लेने पर रात्रि की नींद पूरी करने की कोशिश कर ही रहा था कि पत्नी आ गयी। "इस बीच बिशन के यहाँ बड़ा भयानक कांड हो गया।"

"क्यों, क्या हुआ?" बिशन के बारे में कुछ भी सुन पाना आश्चर्यजनक नहीं रह गया था।

"बिशन को बुखार आया था। उसने चाय माँगी। बस उसकी बहू ने लोहे की सनसी लेकर उसे पीटना शुरू कर दिया। फिर उसकी छाती पर बैठकर गला दबाने लगी।"

"अरे, तो क्या वह उसे मार डालना चाहती थी। पागलपन में ही सही, बड़ा विकट बदला ले रही है उससे।"

"विशन चिल्लाया, बचाओ, बचाओ, तो लोग दौड़कर वहाँ गये। तुम्हें रिश्तेदार जानकर कुछ लोग यहाँ भी आये। मैं वहाँ गयी। लोहे के दो एक खांचे विशन के चेहरे पर भी पड़े थे।"

"गजब हो गया तो।"

"अब विशन अच्छा है। दफ्तर जाने लगा है। लेकिन न खा पाता है, न रात ठीक से सो पाता है।...उधर उसकी बहू के फिर बच्चा होने वाला है।"

"हे भगवान, यह सब क्या हो रहा है। एक क्वार्टर दिलाना मेरे हाथ में है, सो आज कल में ही कोशिश करके दिलवा दूँगा।"

विशन को क्वार्टर मिल गया। वह अपनी पत्नी को लेकर वहाँ चला गया। मेरे मकान से उसका क्वार्टर दूर था। इसलिए जल्दी मुलाकात होने का कोई सवाल ही न था।

जाड़े के दिनों में मैं एक होटल के बाहर धूप में कुर्सी पर बैठा हुआ अपने कुछ सहयोगियों के साथ चाय पी रहा था कि देखा विशन वहीं एक कुर्सी पर आकर बैठ गया। उसका चेहरा सूजा हुआ लग रहा था। पैरों पर नजर पड़ी तो उनमें भी सूजन लगा। मेरे कुछ पूछने के पहले ही वह बोला, "चन्दन, मेरे लिए भी एक चाय के लिए कह देना।"

चाय, नमकीन, मिठाई, उसके सामने आयी तो वह जैसे महीनों का भूखा हो, इस तरह निगलता हुआ बोला, "क्या करूँ चन्दन, उसने तो खाना-पीना-सोना सब हराम कर दिया है। मैं अपने लिए खाना पकाता हूँ तो उस पर पानी डाल देती है। मैंने कल उसे धक्का देकर हटाना चाहा तो उसने हाथ पर दाँत मार दिया।" विशन ने हाथ दिखाया।

विशन अपनी धुन में कहता जा रहा था, "लाला का दाल-चावल, घी, तेल का पैसा देना मुश्किल रहता है। होटल के लिए कहाँ से लाऊँ।'

मेरी समझ में नहीं आ रहा था बिशन या उसकी पत्नी में से किस पर तरस करूँ, किस पर गुस्सा। बिशन को तसल्ली दिलाते हुए बोला, "बिशन, वह पागल हो गयी है। उसे कहीं दिखाओ।"

"वह बनी हुई है।" बिशन चाय की आखिरी घूँट लेकर होंठों को घृणा से बिचकाते हुए बोला, "मैंने उसे यहाँ के पागलखाने में वहीं के डाक्टर की खुशामद करके रखवाया। उसने सातवें दिन ही उसे छोड़ दिया। बोला, "आपको बहम हो गया है। यह औरत बिल्कुल ठीक है। जरा खून की कमी है। इसे आपकी बड़ी फिक्र रहती है। कहती रहती है, मैं वहाँ हूँ, यहाँ तुम्हें खाने-पीने की तकलीफ होगी।"'अब बता चन्दन, क्या करूँ इस औरत को। और सबसे ठीक रहती है। बस मुझे ही सता-सताकर मारना चाहती है।

स्पष्ट था कि बिशन की पत्नी के मन में प्रतिशोध की आग धधक रही थी जिसे वह अपढ़-गंवार औरत समझ न सकने के कारण पागल हो गयी थी। बस तलाक देना ही उसके लिए एक चारा था। तलाक! मन ही मन अपने ऊपर मुझे हँसी आयी। जिसके खाने-पीने का ठिकाना नहीं, गरीबी के कारण जो एक अधेड़ निर्धन के गले मढ़ दी गयी, वह तलाक दे'''। दफ्तर की याद आते ही झटके से उठते हुए मैंने कहा, "किसी तरह उसे संभालो बिशन। और कोई चारा नहीं।"

"संभालूं उसे!" बिशन भी कुर्सी से उठते हुए बोला, "साली को अब बुखार रहने लगा है। अस्पताल के डाक्टर इन्जेक्शन बताते हैं। पैसे हैं नहीं। साली मुझे मार डालना चाहती है। मैं भी साली को अब घुल-घुलकर मरते देखूंगा।"

कुछ दिनों बाद बिशन होटल के बाहर ठीक उसी वक्त उसी कुर्सी पर आ बैठा। अपना हाथ अपने मुँह की ओर ले जाकर उसने मेरी ओर चाय के लिए इशारा किया। मैंने उसे चाय दिलवा दी। लेकिन आज गौर से देखा तो उसके पैरों का सूजन बहुत बढ़ा था।

"क्यों, बिशन, यह सूजन कैसे आ गया।"

"क्या मालूम। कल अस्पताल में दिखाया तो डाक्टर ने वहीं भर्ती हो जाने को कहा है। घर में कौन देखने वाला है। कल भर्ती हो जाऊँगा। यहाँ पास ही दफ्तर है, इससे तुमसे कहने चला आया। चन्दन, हो सके तो कभी अस्पताल आकर जरूर देख लेना भई!"

"ऐसी क्या बात है। मैं जरूर तुम्हें देखने आऊँगा।" उसे दिलासा देते हुए मैंने कहा। बाकी लोग उसे भला-बुरा कहते हैं, पर पता नहीं क्यों मुझे वह कभी-कभी बड़ा मासूम और निरीह लगने लगता है।

एक तो काम अधिक था। दूसरे मन ही मन यह ख्याल उठता रहता था कि अस्पताल जाकर मैं कर ही क्या लूँगा। आखिर छुट्टी के दिन जाने का निश्चय किया। लेकिन बिशन की हालत अत्यन्त गम्भीर हो चुकी थी, इसका अहसास मुझे तब हुआ जब मेरे एक रिश्तेदार का अस्पताल से दफ्तर में ही फोन आया, "बिशन खत्म हो गया है। उसके दफ्तर के लोग आ गये हैं। आप भी आना चाहें तो आ जायें।"

भारी मन और हृदय लेकर अस्पताल पहुँचा। बिशन के दफ्तर के लोगों ने चन्दा करके उसको ले जाने लिए गाड़ी कर ली थी। तभी एक ने सुझाव दिया, "इसकी पत्नी को भी आखिरी बार इसका मुँह दिखा दो। ऐसे नाजुक मामले में ना कौन कहता। सभी राजी हो गये।

गाड़ी बिशन के क्वार्टर को ले जायी गयी। पास-पड़ोस की दो-चार औरतें बिशन की पत्नी को कमरे के बाहर लायीं। शर्म से सभी ने आँखें फेर लीं। घुटने के ऊपर तक फटी धोती थी और ऊपर का हिस्सा पतले फटे चिथड़े से ढका था। एक औरत ने रोनी आवाज में उससे कहा, "तुम्हारा मालिक चल बसा है। आखिरी बार उसका मुँह देखना है, देख लो।" वह उस औरत की ओर ऐसे देखती रही जैसे कुछ समझी ही नहीं। फिर औरतों ने उसे किसी तरह गाड़ी के ऊपर चढ़ाया। लोगों ने बिशन का मुँह खोल दिया। वह एक मिनट तक उसका देखती रही। फिर नीचे उतर आयी। उसकी आँखों से न एक आँसू निकला, न चेहरे पर दर्द

की कोई रेखा ही खिंची। सीधे कमरे में जाकर उसने दरवाजे वन्द कर लिये। सिर नीचे किये हुए सभी लोग गाड़ी में बैठ गये।

नदी पार एक मित्र के यहाँ जाना था। पत्नी ने सुझाव दिया कि रास्ते में बिशन के क्वार्टर पर भी देख लूँ। कई रोज से मैं भी सोच रहा था कि उसकी स्त्री और रिश्तेदारों को भी लिखूँ और सबकी मदद लेकर जो कोई भी व्यवस्था हो सके, उसके लिए कर दूँ।

बिशन के क्वार्टर के पहले पड़ने वाले चौराहे पर पहुँचा ही था कि शोर मचाते, मैले-कुचैले कपड़े पहने, छोटे-छोटे लड़कों का एक झुण्ड और उसके आगे-आगे फटी-चिथड़ी-सी धोती पहने एक औरत को अपनी ओर आते देखा। बीच-बीच में वह औरत पीछे की ओर मुड़कर हाथ का डंडा उन बच्चों की ओर घुमाती जाती थी। पास पहुँचने पर मैं ठिठक कर देखता ही रह गया। वह बिशन की ही स्त्री थी। गुस्से में रिक्शे से उतर कर मैंने बच्चों को झिड़का तो वे मानो मेरे इस कार्य की निरर्थकता सिद्ध करने के लिए जोर-जोर से चिल्लाकर बोले, "बाबूजी, यह तो पगली है। रोज यहाँ बड़बड़ाती जाती है।"

मैं बिशन की स्त्री के पास गया। लड़के दूर ही खामोश होकर खड़े हो गये। उसके हाथ के डंडे से मुझे भी मन ही मन भय हुआ। वह उद्‌भ्रान्त दृष्टि से कुछ देर मेरी ओर देखती रही। पहचानने का कोई भाव उसके चेहरे पर न था। बोली, 'जानते हैं आप, वे कई दिन से आये नहीं हैं। खाना भी न खाया होगा उन्होंने। मैं ढूँढने जाती हूँ तो ये लड़के हल्ला मचाकर उन्हें आने नहीं देते। आप इन्हें डाट दीजिए। मुझे बहुत देर हो रही है।' और वह तेजी से आगे बढ़ गयी।

मैं भारी कदमों से वापस रिक्शे पर बैठ गया।

●

धर्म रक्षक

गाँव पहुँचते-पहुँचते रमेश को शाम हो गई। इक्के से झोला लेकर वह राधा काकी के घर की ओर चला, तो शरीर में कुछ थकान होने पर भी मन प्रसन्न था। कई सालों से वह गाँव न आ सका था। अपने काम से ही फुर्सत नहीं मिली थी। आज सबसे मिलकर कितना आनन्द आयेगा। हृदय में उल्लास भर गया। चाल और भी तेज हो गई। घर पास आया तो यह सोचकर मन ही मन हँसा कि अचानक उसे आया देख काकी अत्यंत आश्चर्य से उसकी ओर देखेंगी, फिर सब बच्चों को जोर-जोर से बुलाकर कहेंगी, "अरे देखो, यह कौन आया है?"

यही सब सोचता हुआ वह सीधे घर के भीतर चला गया, पर वहाँ पहुँचते ही सबको विचित्र ढंग से अपनी ओर घूरता देख वह कुछ सकपकाकर एक ओर खड़ा हो गया। लालटेन की धीमी रोशनी में भी उसने स्पष्ट अनुभव किया कि गाँव के बड़े बूढ़े उसे देख ऐसे चौंके जैसे कमरे में बाघ घुस आया हो और भागने का कोई रास्ता न हो। कोई भी अपनी जगह से न हिला, न डुला, न उससे कुछ बोला।

कुछ क्षण सन्नाटा छाया रहा। रमेश ने ही कुछ संभल कर सामने खड़े अपने चाचा जी को झुक कर प्रणाम किया। वे कुछ अस्पष्ट शब्द कह कर तेजी से बाहर की ओर चले गए। उनके पीछे बाकी सब भी उससे एक दो बातें कह कर वहाँ से खिसकने लगे। अन्त में दूसरे कमरे से आकर बाहर जाते हुए शोभा भाभी बोलीं, "क्यों लाला, आज गाँव में आकर

दर्शन हो ही गए। शहर में तो तुमने हमारे यहाँ आना ही बन्द कर दिया था। आज कहाँ ठहरोगे ? यहाँ या अपने घर ?"

"तुम जहाँ कहो, भाभी।" रमेश ने फीके स्वर में उत्तर दिया।

"मैं कहूँ।" शोभा मुस्कराकर बोली। "अपने घर ठहरो लाला। शहर में न सही, गाँव में तो हमें सत्कार करने का अवसर मिलेगा।" फिर जाते-जाते बोली—"यहाँ ठहरोगे तो कल काकी की बारात जुड़नी मुश्किल हो जायेगी।'

कमरा खाली हो गया। रमेश कुछ समझ नहीं पा रहा था। कई क्षणों तक वह विस्मय-विमूढ़-सा वैसे ही खड़ा रहा। एक संदेह उसके मन में उठा। राधा काकी की ओर देखा। उनका मुँह भी फक पड़ा हुआ था। बोला—"क्यों काकी यह सब क्या ? भाभी क्या कह गई, मैं नहीं समझा। मेरी माँ नहीं है। तुम्हीं से मुझे माँ की ममता मिली। कामेश्वर को मैंने हमेशा अपना छोटा भाई समझा। उसका पत्र मिला। उसका विवाह है, यह मालूम होते ही मैं अपना अखबार का काम दूसरे को सौंप बड़ी मुश्किल से समय निकाल चला आया। दूसरे किसी काम के लिए मैं इतना समय न निकाल पाता। यहाँ आया तो सब ऐसे चले गए जैसे कोई जंगली जानवर उनके बीच आ गया हो।"

काकी के चेहरे का रंग और भी फीका पड़ गया। उदास स्वर में बोली, "बैठ बेटा, तू इतनी दूर से आया है, थक गया होगा।" फिर अपनी लड़की को आवाज देते हुए बोली—"लक्ष्मी, देख तेरा रमेश भैया आया है। हाथ-पैर धोने के लिए जल तो ले आ।"

रमेश ने गौर किया—आज काकी के स्वर में पहले का-सा उल्लास, पहले का-सा जोर नहीं है। उसके हृदय में ठेस-सी पहुँची।

पास ही रखे हुए पटड़े पर बैठते हुए बोला—ना काकी, मैं पानी-वानी कुछ न पियूँगा। तुम्हें सब बातें साफ-साफ बतानी हों, बता दो, नहीं तो मैं जाता हूँ। किसी पेड़ के नीचे रात काट कर सुबह चला जाऊँगा।"

रमेश ने देखा, काकी ने सिर दूसरी ओर मोड़, आँचल से आँसू पोंछ लिये। उसके हृदय में अजीब ऐंठन-सी मालूम देने लगी। एक ओर काकी

के, उपेक्षा का भाव, दूसरी ओर ये आँसू, उसके लिए एक पहेली बन गए। काकी बोली, कुछ न खा-पीकर तू कामेश्वर के लिए अपशकुन करेगा क्या ?"

"प्यास तो लगी है, पानी पी लूंगा।" रमेश अपने स्वर को स्वाभाविक बनाये रखने का प्रयत्न करते हुए बोला, "पर खाऊँगा तभी, जब सब बातें मालूम हो जायेंगी।"

लक्ष्मी पानी ले आई। रमेश ने हाथ मुँह धोया और पानी पीकर फिर उसी पटड़े पर बैठ गया।

उसे अपने उत्सुक नेत्रों से निहारते देख काकी बोली, "तूने अपने सगे चाचा और वंशगोपाल का व्यवहार देखा। बाप-बेटे तुझसे बिना कुछ कहे ही गुस्से में भरे हुए तत्काल चले गए और उनके पीछे बाकी सब लोग भी। तेरे इस चाचा ने धर्म-शास्त्र की दुहाई देकर सबसे कह दिया है, तुझसे कोई किसी तरह का संबंध न रक्खे। वे कहते हैं, तूने जाति-बाहर की लड़की से विवाह कर बड़े-बूढ़ों का निरादर किया है। समाज और धर्म को मिटाने की कोशिश की है। तुझे बड़ा दण्ड न दिया गया तो दूसरे लड़के भी विगड़ जायेंगे।"

"लेकिन काकी मैंने जाति-पांति तोड़ने के शौक से यह ब्याह नहीं किया। तुम तो जानती हो, अगर मैं यह ब्याह न करता तो उसका क्या होता।"

"मैं ही क्या, सभी जानते हैं। बिचारी पास ही के गाँव की तो है। अगर तूने उसे चांडालों के चंगुल से न छुड़ाया होता, तो उस फूल जैसी लड़की का उतने बड़े शहर में क्या पता लग पाता। बिचारी का पता लगाता ही कौन ? विना बाप की वेटी, माँ को दो जून खाना जोड़ना भी मुश्किल। लौटकर भी आती तो कौन रहने देता। काम तो तूने भला किया वेटा ..."

"सभी यह जानते हैं काकी और फिर चाचा के कहने से मुझे दण्ड भी देना चाहते हैं ?"

"बेटा, यह गाँव है, शहर नहीं। यहाँ कोई जात-पाँत से बाहर जाकर रह नहीं सकता। सभी के बेटे-बेटियाँ हैं। उनका ब्याह करना······"

"पर काकी मैं तो अकेले आया हूँ। सभी जानते हैं, बारात के बाद ही मैं चला जाऊँगा। मुझसे कैसा परहेज ?"

"बेटा, तू अपने चाचा को नहीं जानता। बचपन में तू ज्यादातर मेरे साथ रहा। बड़े होने पर शहर अपने मामा के यहाँ कालेज पढ़ने चला गया। तेरे पिता भी न रहे। चार-पाँच साल से तू आया ही नहीं। उसके पहले कभी-कभी आया भी तो थोड़े दिनों के लिए। तुझे क्या मालूम। कौन इनका विरोध करे। कौन कर्म इनसे छूटा है। घर ये फुकवा दें। खेत ये हड़प लें। गाय भैंस चुराकर ये बेच दें। झूठी गवाही देकर सजा ये करवा दें। बहू बेटियों की लाज तक···क्या कहा जाय। पुराने जमींदार जालिम भनक सिंह से मिले हैं। महाजन से साँठ-गाँठ है। दरोगा वगैरह को खुश रखते हैं। लोग तो इनका सम्बन्ध डाकुओं से भी···"

"काकी, ऐसे पुण्यात्मा चाचा क्या सिर्फ जाति-बाहर ब्याह करने के कारण ही मेरा बहिष्कार करवा रहे हैं ?"

तू अभी बच्चा ही रह गया है, बेटा। इस तरह देश-निकाला कर तेरे हिस्से का मकान जमीन ये हड़पना चाहते हैं। सब यह समझते, हैं पर दूसरे के लिए बोलने का साहस किसमें है और यह वंशगोपाल तो कहता है, जिस-लड़की के साथ तुमने ब्याह किया है, वह खुद भागी थी और क्रिस्तान मुसलमानों के घर बैठ चुकी है।"

"क्या ?" रमेश ने पूरी शक्ति से अपना उमड़ता हुआ क्रोध दबाकर पूछा। उसका सारा शरीर काँप उठा।

"हाँ, बेटा।" काकी रमेश का भाव-परिवर्तन न देख, स्वाभाविक स्वर में कहती गई, "ऐसी ही बातों से ये लोग गाँव वालों को उभाड़ते रहते हैं। खुद इस वंशगोपाल ने सौतेले भाई पर कलंक लगाकर उसे घर से निकाल दिया है। बेचारे की माँ रही नहीं। घर से भी निकाल दिया।"

"क्या ?" रमेश अब तक अपने को काफी संयत कर चुका था।

"कृष्ण-गोपाल को इन लोगों ने घर से निकाल दिया है ? क्या कलंक लगाया है, उस पर ?"

"शायद बहू ने ही कुछ कह दिया हो। वंशगोपाल कहता है, "वह आस्तीन का साँप निकला। तेरे चाचा कहते हैं, धरम-मरजाद (धर्म-मर्यादा) के लिए अपने भतीजे को ही नहीं, अपनी संतान को भी कड़ा दण्ड देने से नहीं चूकता।"

"कहाँ रहता है कृष्ण गोपाल ?" रमेश ने शान्त स्वर में पूछा।

काकी ने रमेश के चेहरे की ओर देखा। लालटेन के प्रकाश में उसमें अस्वाभाविक गांभीर्य देख वे घबड़ाईं। कुछ दबे स्वर में बोलीं, "मंडी में जो स्कूल है, उसी में मास्टर है। उसी के पास एक छोटी-सी कुटिया में दो और मास्टरों के साथ रहता है। स्कूल में पूछने पर कोई भी बता देगा।"

"अच्छा काकी।" रमेश उठते हुए बोला, "ये शोभा भाभी जाते जाते घर में टिकने के लिए कह गईं। क्या इसमें भी कोई चाल है ?"

काकी कुछ सहमें स्वर में बोली, "तू पहले बैठ तो जा।"

"तुम बताओ भी।" रमेश ने एक एक शब्द पर जोर देते हुए कहा।

काकी कुछ सोचकर बोली, "किसी के मन को मैं क्या जानूं बेटा। वैसे यह बिचारी सबसे बड़ी ममता रखती हैं। दुख दर्द में सबके यहाँ चली आती है। मालूम नहीं कैसे इन कसाइयों के हाथ पड़ गई।"

सीढ़ियों में पैरों की आवाज सुन रमेश का ध्यान उधर आकृष्ट हो गया। कामेश्वर हाँफता हुआ आ रहा था। आते ही प्रणाम कर बोला, "मुझे अभी मालूम हुआ, आप आए हैं। दौड़ा चला आया। माँ कहती थी, फजूल तुम्हें कष्ट होगा, पर मैंने इनके पीछे चिट्ठी भेज ही दी।"

कामेश्वर बीच ही में रुक गया। उसने देखा, रमेश भैया का चेहरा अत्यन्त गम्भीर है और वे जाने को उद्यत हैं। उसने माँ की ओर देखा। कुछ समझ में न आया। "क्यों भैया, कहीं जा रहे हो क्या ?"

"हाँ, कामेश्वर, आज अपने घर रहूँगा। तेरे पास मेरी वह लाठी है, जिससे हम दंगल करते थे।"

"हाँ, है तो।" कामेश्वर ने कुछ सहम कर कहा।

"उसे ले आ तो। अंधेरे में कुछ सहारे की जरूरत पड़ती ही है।"

काकी ने चौंक कर रमेश की ओर देखा। "तू क्या कह रहा है? अपने घर रहेगा। नहीं, तू यहीं रहेगा। चल, उठकर खाना खा ले।"

रमेश ने देखा—ममता विवशता पर विजय पाने का असफल प्रयत्न कर रही थी। उसके होठों पर हल्की मुस्कराहट आ गई। बोला "तो काकी कल कामेश्वर की बारात में अकेले मुझे ही बाराती बन कर जाना पड़ेगा।"

"देखा जायेगा बेटा।" काकी तेज स्वर में बोली—"बारात तेरे प्राणों से अधिक थोड़े ही है।"

"मेरे प्राण कोई न ले सकेगा, काकी।" रमेश दृढ़ स्वर में बोला। "तुम चिन्ता न करो।"

कामेश्वर ने लाठी लाकर रमेश के हाथ में दे दी।

रमेश जाने लगा तो काकी पास आकर बोली, "अगर तू जाता ही है तो उनके यहाँ कुछ खाना-पीना मत। न मालूम क्या मिला दे। कोई ठीक थोड़े ही है।"

रमेश ने जोर से सांकल खटखटाई। दरवाजा खुला। लालटेन हाथ में लिए स्वयं चाचा खड़े थे। रमेश ने लपक कर चौखट पार कर ली। चाचा ने दो बार आँखें मल कर देखा। रमेश ही था। उन्हें अत्यन्त आश्चर्य हुआ। इसका इतना साहस कि यहाँ चला आया। रूखे स्वर में बोले, "राधा काकी ने रहने की जगह नहीं दी क्या?"

रमेश वैसे ही तनकर बोला, "अपना घर होते हुए राधा काकी के यहाँ क्यों रहता। इस घर में आधा मेरा भी तो है।"

चाचा को तेज धक्का-सा लगा। आँखें क्रोध से फैल गईं। कुछ कड़ी बात कहने को ही थे कि बोलने की आवाज सुन वंशगोपाल चला आया। रमेश को देख वह भी चकराया। पर अपने आश्चर्य का भाव प्रगट न होने देने का प्रयत्न करते हुए बोला, "कौन, रमेश। क्यों, खड़े क्यों हो?"

वंश गोपाल ने अपने पिता के हाथ से लालटेन ले ली। दोनों ने प्रश्नसूचक दृष्टि से क्षण भर के लिए एक दूसरे की ओर देखा। दूसरे ही क्षण आँखें नीची करली। दोनों कोई निर्णय न कर पा रहे थे।

रमेश ने यह देखा। वंश गोपाल से बोला, "तुम मुझे कोई कमरा बताओगे, या मैं ही ढूंढ लूं।"

चाचा और वंश गोपाल दोनों के चेहरे क्रोध से तमतमा गए। वंश गोपाल कुछ न कहकर आगे बढ़ गया। रमेश भी पीछे चला, तो चाचा अपने कमरे में जाने के पहले रुक कर बोले, "वंशगोपाल, इससे कह दे, रहने आया है तो रह ले। मकान इसका भी है। पर घर के बुजुर्गों का ख्याल न कर धर्म-मर्यादा तोड़ने वाले के साथ हम अन्न-जल का व्यवहार नहीं रख सकते। इसी कारण मैंने कृष्ण गोपाल को भी अलग कर दिया।"

रमेश दूसरे कमरे की ड्योढी पार करने को ही था। ये शब्द सुन वहीं रुक कर बोला, "अपनी-अपनी मर्यादा होती है चाचा। मेरे लिये आपका अन्न-जल ग्रहण करने से बड़ा दुर्भाग्य दूसरा नहीं हो सकता।"

चाचा ने क्रोध से दाँत पीस कर रमेश की ओर देखा। पर उसका बलिष्ठ शरीर और उसे हाथ में लाठी लिए तन कर खड़ा देख, वे बड़-बड़ाते हुए अपने कमरे में जाकर चारपाई पर लेट गये। वंश गोपाल ने कोने वाले कमरे में जाकर लालटेन जमीन पर रख दी। चारपाई दिखा कर बोला, "यह रही चारपाई। मुझे जरूरी काम है। मैं चलता हूँ।"

रमेश इस अपमान से तिलमिला गया। चारपाई पर कंबल बिछा कर लाठी सिरहाने रख दी और लेट गया। प्रयत्न करने पर भी उसे नींद नहीं आई। बचपन से लेकर अब तक का जीवन उसकी आँखों के सामने चल-चित्र की तरह खिच आता था। जब से होश सँभाला, यही जमीन-जायदाद के झगड़े ही देखने को मिले। कैसी अजीब बात है। न खुद जोतेंगे, न बोयेंगे, पर उसके पीछे सभी दुष्कर्म करने को तैयार रहेंगे।

अचानक उसे बीच वाले दरवाजे के दूसरी ओर से खटके की सी मालूम दी। वह सतर्क हो गया। तत्काल ही दरवाजा खुल गया और

लालटेन के प्रकाश में उसने देखा शोभा भाभी हाथ में कुछ लिए खड़ी थी।

वह उठ बैठा। शोभा पास आकर बहुत धीमे स्वर में बोली, "तुमने खाया भी नहीं। थके होंगे। मैं यह लाई हूँ। पत्ते अपने झोले में रखकर कल कहीं फेंक देना।"

रमेश का हृदय पिघल गया। गद्गद् स्वर में बोला, "भाभी यह आपकी दया है, पर मैं इस घर का अन्न-जल नहीं ले सकता।"

शोभा तेजी से फुस-फुसाते हुए बोली, "देखो लाला, उधर अगर जरा भी खटका हो मैं कहीं की न रहूँगी और तुम भी मुसीबत में पड़ जाओगे। यह खाना अपने हिस्से में से लाई हूँ। मेरा भी तो यहाँ कुछ अधिकार है।"

रमेश को परिस्थिति का भान हुआ। उसने एक दो रोटियाँ ले लीं। भाभी तेजी से चली गई। जाते जाते धीरे से पहले की तरह दरवाजा बन्द कर गयी। रमेश ने उसपर सांकल चढ़ा दी।

रमेश ने रोटियाँ झोले में डाल दी। भाभी के इस स्नेहमय बर्ताव से अपने अपमान की जलन कुछ कम हो गई। सोचने लगा। गाँव का जर्जर-रूढ़िवादी ढाँचा अभी नहीं बदला। सभी का कितना दम घुटने वाला जीवन है। काकी शहर में रह चुकी है। कुछ पढ़ी लिखी भी हैं। पर यहाँ आकर कितनी मजबूर हैं। मेरा बचपन उन्हीं के यहाँ बीता है, पर आज उनके यहाँ मेरे रहने के लिये ठौर नहीं है। वंश गोपाल और चाचा मेरे खून के प्यासे हैं। उन्हीं के यहाँ ठहरने को मैं मजबूर हूँ और उन्हीं की बहू लाकर मुझको खाना देती है और इसी भाभी के पीछे काकी कहती थी कि कृष्णगोपाल को निकाल दिया गया। कल मंडी जाना पड़ेगा। खाने का वहीं बन्दोबस्त करूँगा। वहीं कृष्ण गोपाल से भी मिल लूँगा। वहीं से वापस शहर भी जा सकता हूँ। पर नहीं, अब बारात में शामिल होना ही पड़ेगा। नहीं तो ये चाचा और वंशगोपाल समझेंगे

मैं उनके डर से भाग गया और इसका ढिंढोरा पूरे गाँव में पीटेंगे। नहीं, बरात में शामिल होना ही पड़ेगा।

रमेश को पता भी न चला कि कब उसे नींद आई और कब सुबह हुई।

नित्य कर्म से निवृत्त होते ही झोले में अपना कम्बल डाल वह जाने को उद्यत हुआ, पर किसी को अपने पास आता न देख स्वयं ही चाचा के पास जाकर बोला, "मैं जा रहा हूँ। यह अपना ही घर है। आता रहूँगा।"

चाचा पत्थर की मूर्ति की तरह बैठे ही रहे। यह पहला ही अवसर था, जब कोई उनकी माँद में आकर उन्हें इस तरह ललकार कर गया हो। उन्हें वह अपशकुन-सा लगा।

वंशगोपाल को आते देख बोले, "सुना तूने, क्या कह गया है।"

"नहीं, सुना तो नहीं, हाँ जाते देखा।"

"कहता था, अपना ही घर है, फिर आऊँगा। पतुरिया घर में बिठाई है। यहाँ आके रहेगा।"

"अरे, अब जो आया तो कुछ इन्तजाम करेंगे। अभी से क्यों चिंता करते हैं।"

"अरे गाँव वालों को भी समझाना होगा।"

"अच्छी बात है समझा लेंगे।"

वंशगोपाल बोला और दूसरी ओर चला गया।

बरात से वापस आने पर शहर लौटने की तैयारी करते करते रमेश को तीसरा पहर हो गया। वह कुछ ही दूर चला था कि गोद में अपने बच्चे को पकड़े हुए एक बैलगाड़ी के पास खड़ी शोभा भाभी मिल गईं। मुस्करा कर बोली, क्यों लाला, हमारे साथ गाड़ी में चलो ना। हमारा भी साथ हो जाएगा। तिवारी जी और उनके बच्चे भी आ रहे हैं।"

रमेश भी थक गया था। सोचा, जरा आराम ही मिल जायगा। इतने में वंशगोपाल, तीवारी जी और उनके बच्चे भी आ गए। शोभा मुस्करा-

कर वंशगोपाल से बोली, 'ये लाला तो अकेले ही लाठी लिए चले जा रहे थे। मैंने इन्हें रोक लिया। कहीं कोई बात हुई तो इन्हें ही लड़ना पड़ेगा। आजकल डाके वाके बहुत पड़ रहे हैं।"

शोभा की बातों से प्रोत्साहन पाकर तिवारी जी गाड़ी में बैठते हुए बोले, "हाँ, हाँ, चले आओ ना। काफी जगह है।"

वंशगोपाल ने शोभा के प्रति उमड़ते हुए क्रोध को दबाकर गाड़ी पर चढ़ते हुए बरबस मुस्कराने का प्रयत्न किया। पर मुस्कान होठों पर आने के पहले ही गायब हो गई।

वंशगोपाल की चुप्पी से चिढ़कर रमेश गाड़ी पर बैठता हुआ बोला, "घर ही की गाड़ी है। जरा आराम मिलेगा।" वंशगोपाल ने एक बार उसे घूर कर तिवारी जी से दहेज की बातचीत आरम्भ कर दी। शोभा बच्चे को सुलाने का प्रयत्न करने लगी।

गाड़ी रवाना हो गई।

रमेश अपने ही विचारों में उलझ गया। कई बार उड़ती नजर उसने वंशगोपाल पर डाली। एक प्रश्न बार-बार मन में आकर पहेली-सी बन गया। क्या मनुष्य के इतने ही रूप होते हैं या उसे इतने रूप रखने पड़ते हैं?

ये भाभी हैं, बाहर सबसे कितना स्नेह रखती हैं। मेरे लिए खाना लाते समय अगर पकड़ी जातीं, ये तो कहीं की न रहतीं। पर घर में, यदि कृष्ण गोपाल सच कहता है, तो इन भाभी का गुप्त सम्बन्ध अब भी अपने मकान के सामने रहने वाले आदमी से होगा। यह वंशगोपाल अब भी पीकर घर आता होगा और नशे में इसको पीटता होगा।

बैलगाड़ी के पहिए में अचानक कुछ खराबी आ गई। अभी कोस डेढ़ कोस ही रास्ता तै हुआ था। करीब कोस भर और जाना बाकी था। पहिया ठीक होते होते कुछ देर लग गई और चाँदनी छिटक आई।

गाड़ी आगे बढ़ी तो, कहीं कहीं पर घने पेड़ और झाड़ियों से छनकर

सड़क पर पड़ने वाली चांदनी का क्षीण प्रकाश विचित्र और कुछ कुछ भयावना सा लगता था ।

कोई आधा मील और गाड़ी बढ़ी होगी कि सड़क के बीचोबीच कोई चीज देख गाड़ीवान ने गाड़ी एकदम रोक दी । सड़क के किनारे दो तीन घने पेड़ साथ साथ होने के कारण धुंधले प्रकाश में साफ साफ कुछ दिखाई न देता था । तत्क्षण ही उसका आकार बढ़ता हुआ सा प्रतीत हुआ और पलक मारते ही तीन आदमियों ने गाड़ी घेर ली । निकट आ जाने पर भी उनके चेहरे स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ रहे थे । दो आदमी गाड़ी के दो ओर खड़े हो गए । एक ने बिलकुल पास आकर कड़कती आवाज में कहा, 'उतरो ।'

रमेश को अपनी दाहिनी ओर किसी चीज के अपने पैर से टकराने का आभास हुआ । देखा, तो वंशगोपाल का कांपता घुटना उसके घुटने से टकरा रहा था । तिवारी जी स्तब्ध बैठे हुए थे । बच्चे भयभीत होकर उनसे चिपक गए थे ।

वह आदमी अपनी लाठी गाड़ी में बैठे हुए व्यक्तियों को जोर-जोर से चुभोते हुए फिर कड़का, "उतरो ।" तिवारी जी ही पहले लड़खड़ा कर उतर गए ।

वंशगोपाल ने कांपते हुए जैसे ही उतरने की कोशिश की, वैसे ही बेहोश होकर एक ओर लुढ़क गया । तिवारी जी की पत्नी अपने बच्चों को लेकर उतरने लगीं, तो रमेश ने शोभा को भी अपने से अलग करके आगे बढ़ा दिया ।

इतने में विद्यु त गति से रमेश उछला और लाठी का भरपूर हाथ गाड़ी के पास लाठी चुभाने वाले आदमी पर पड़ा । वह वहीं गिर पड़ा । दूसरा हाथ उसी ओर खड़े आदमी पर पड़ा । वह चीख कर किनारे की ओर भागा । तीसरा इस अचानक आक्रमण से घबराकर भाग खड़ा हुआ ! सब निमिषमात्र में ही हो गया ।

धुंधले प्रकाश में तिवारी जी ने देखा, रमेश लाठी लिए खड़ा है और

उन्हें गाड़ी पर चढ़ने को कह रहा है। प्रसन्नता के मारे उनके मुँह से आवाज ही नहीं निकली।

सब गाड़ी पर बैठ गए। वंशगोपाल अभी बेहोश ही था। रमेश उसे उठाने लगा तो हाथ में कुछ गीला सा लगा। तिवारी जी से दियासलाई मांगकर जलाई, तो देखा उसके सर में आधे धंसे ईंट से टकराने से घाव हो गया था। खून बह रहा था। पट्टी बाँध कर उसे गाड़ी में लिटा दिया गया। रमेश लाठी लिए खड़ा ही रहा और गाड़ीवान से गाड़ी तेज हांकने को कहा।

इतने में सबने देखा जो आदमी लाठी की चोट से गिर पड़ा था, वह उठ कर पेड़ की ओट में गायब हो गया। गाड़ीवान ने गाड़ी और तेज कर दी।

वंशगोपाल को अस्पताल में भर्ती करवा कर रमेश शोभा के साथ उसके घर पहुँचा। शोभा बच्चे को भीतर सुलाने के लिये ले जाते हुए बोली, "लाला, जाना मत, मैं अभी आती हूँ।"

रमेश वहीं कुर्सी पर बैठ गया। पास ही रक्खा हुआ अखबार उठाकर मुंह पर पंखा करने लगा।

शोभा एक हाथ में ललटेन और दूसरे में शरबत का गिलास लेकर आयी। लालटेन रखते समय, रमेश ने देखा, उसकी दृष्टि कुछ क्षणों के लिये सामने जंगले पर टिकी रही। उस दृष्टि में क्या भाव था, लालटेन के क्षीण प्रकाश में वह न जान सका।

शोभा गिलास उसकी ओर बढ़ा-कर बोली, "लाला, आज खूब बचा लिया, नहीं तो न मालूम क्या होता फिर कुछ रोष भरे स्वर में बोली, और तुम जैसे आदमी का लोग अनिष्ट चाहते हैं। तुमने अच्छा किया जो अपने ही घर ठहरे। नहीं तो…"

शोभा एकाएक रुक गई। रमेश को कौतुहल हुआ। बोला, "नहीं तो क्या होता भाभी।" शोभा को असमंजस में पड़ा देख उसे आश्चर्य हुआ। स्नेह भरे स्वर में उसने अपना प्रश्न दुहराया "नहीं तो क्या होता भाभी ?"

मेरे ऊपर अगर विश्वास कर सको तो बता दो। मुझसे तुम्हारा अहित न होगा, इसकी···"

इसे मैं क्या नहीं जानती, लाला। तुमसे किसी का अहित नहीं हो सकता। लेकिन तुम्हारे चाचा से सभी डरते हैं। वे तुमसे बेहद चिढ़े हुए हैं। पर तुम जब घर ही पर ठहर गए, तो वे क्या कर सकते थे। बात खुल जाती। बारात में भी गड़बड़ी करने लायक उनका मुंह नहीं रहा।"

लेकिन भाभी मेरे हिस्से के मकान और जमीन का भोग वे कर ही रहे हैं। मैं गाँव में आता ही कहाँ हूं। फिर भी वे मेरे पीछे हाथ धोकर पड़े हुए हैं।"

इतनी ही बात नहीं है, लाला। तुम्हें उनसे बचकर ही रहना चाहिये।

"क्यों? भाभी।" रमेश की आँखों में अत्यन्त कौतुहल और आश्चर्य का भाव उभर आया।

"मैं बता तो दूं लाला, पर कहीं तुम गुस्से में कुछ कर न बैठो।"

"मैं वचन देता हूँ, भाभी, गुस्से में कुछ न करूँगा।"

"लेकिन तुम्हें जानकर बहुत दुख होगा। इसलिये रहने···"

"मैं सब बातों का आदी हो चुका हूँ भाभी···"

"तुम जानना ही चाहते हो, बाताए देती हूं, लेकिन इसका ध्यान रखना कि मेरे अलावा और कोई इस बात को नहीं जानता···"

"कहे जाओ भाभी, संकोच न करो।"

"तुमने बहू को जिन लोगों से छुड़ाया था, वे तुम्हारे चाचा के ही आदमी थे।"

"क्या। चाचा के आदमी थे।" रमेश चौंक कर बोला। "क्या तुम्हें ठीक मालूम है।"

"हाँ, हाँ, ठीक मालूम है। जहाँ तुम्हारी ससुराल है, वहीं चाचा की भी है। वे चाह रहे थे कि तुम्हारी सास कुछ रुपया लेकर लड़की का ब्याह वहाँ के बूढ़े महाजन से कर दे। वह न मानी, तो वे अपने आदमियों के जरिये यह काम जबरदस्ती करा रहे थे। मोटा थलथल महाजन ब्याह

के लिये शहर जा चुका था।...तुम बीच में न पड़ते, तो बाद में कौन क्या कहता ? महाजन अपनी ही जात में ब्याह कर रहा था।...इसी से कहती हूँ तुम चाचा से बचकर..."

"अब तुम समझी भाभी, कैसे-कैसे रक्षक हैं इस समाज की धर्ममर्यादा के।" रमेश जाने के लिये उठ खड़ा हुआ। फिर कुछ सोचकर बोला, "यह सिर्फ संयोग था कि मैं उस रास्ते से निकल गया जहाँ तुम्हारी बहू को वे लोग लाए थे और उसने मुझे पहचान कर हिम्मत करके आवाज दे दी... अगर मैं उधर से न निकलता तो...।" रमेश आगे बढ़ा।

"शोभा आर्द्र कंठ से इतना ही कह पाई तुम ठीक कहते हो लाला,यह समाज ही खोटा है।"

परलोक का सुख

मुंशी रामसहाय लगभग पन्द्रह साल से म्यूनिसपैलिटी के दफ्तर में हैं। परिचय के समय अपना भीतर धंसा हुए सीना फुलाकर गर्व से अपने को हेडक्लर्क बताते हैं। उनका पीला, पिचका चेहरा, धंसी हुई आँखें, गंजा सिर और अत्यन्त कृश शरीर नये परिचित के मन में उनके पद के बारे में कोई संदेह शेष नहीं रखता। म्युनिसीपैलिटी के दफ्तर जाते और वहाँ से लौटते समय उनकी चिर-संगिनी छतरी उनके हाथ में रहती है। गली में नये आब से लोग उन्हें छतरी वाले मुंशीजी कहने लगे हैं। यह छतरी उनके जीवन और शरीर का एक अंग बन गई है। इसमें लगे पैबन्द बताते हैं कि वह इस ज़माने की चीज नहीं है। अपने वेतन के बारे में कुछ चर्चा उन्हें पसन्द नहीं। पहले प्रतिवर्ष कुछ बढ़ाकर बताते थे परन्तु उमर तो बढ़ती गई और वेतन बढ़ा सकना उनके बस की बात नहीं। उम्र के विचार से वे अपने को जवान ही समझते हैं परन्तु चेहरा उनके विचार का साथ नहीं देता इसलिये उम्र का भी जिक्र नहीं करते।

परिवार उनका कोई ज्यादा बड़ा नहीं है। बस, बूढ़े माँ-बाप, तीन भाई और पाँच बहिनें, जिनमें से दो बहिनें विधवा होकर जन्म देने वालों के ही पास आ टिकी है। दो विवाह के योग्य हो गई हैं और एक छोटी है उनकी अपनी सन्तान से भी है इसलिये रामसहाय उसे बेटी ही समझते हैं। अपने पिता के वृद्धावस्था तक खिचती आयी यौवन शक्ति की बात से

उन्हें एक गुप्त आश्वासन अपने यौवन की पायेदारी के विषय में मिलता रहता है। और अभी केवल पाँच ही बच्चे हैं। कमाने वाले अभी तो केवल एक वही हैं। यों बूढ़े पिता को थोड़ी सी पेन्शन मिलती है।

बाबूजी का जन्म उनके कहे अनुसार ऊँचे मध्यवर्ग परिवार में हुआ था। तब परिवार बड़ा नहीं था और मंहगी भी आज जैसी नहीं थी। इसलिए गुजारा अच्छा हो जाता था। बल्कि रामसहाय के पिता की अच्छी धाक थी। उनका दादा के समय का मकान था जिसे उन्होंने कर्ज अदाकर नई जमीन पर नया मकान बनाने के लिये बेच दिया था। मकान कुछ अड़चनों से बन न पाया। बाबू रामसहाय किराये के मकान में रहते हैं।

विद्यार्थी अवस्था में शान-शौकत में अपने धनी रिश्तेदारों के लड़कों की बराबरी न कर सकने के कारण उनके हृदय में एक कुढ़न-सी रहती थी। कई बार उन लड़कों के सामने नीचा भी देखना पड़ता था। इससे बचने के लिए वे अपनी कल्पना को ढील देकर काल्पनिक संसार में विचरने लगते। उस काल्पनिक संसार में वे अपने को एक करोड़पति मिल-मालिक से कम नहीं देखते थे। पर जब इससे भी सन्तोष नहीं होता था तो वे अपनी कल्पना पर कुछ और जोर डालकर अपने सामने एक अद्‌भुत रंगीन संसार की सृजना कर लेते, जिसमें विभिन्न अत्यंन्त सुखद दृश्य उनके सामने आने लगते। कभी उनको दिखाई देता कि उनका विशाल महल होगा जिसमें कई कारें हैं, दर्जनों नौकर चाकर होंगे, वे एक अत्यन्त सुसज्जित कमरे में बड़े-बड़े लोगों से घिरे हुए बैठे होंगे। इसी बीच माँ की चिल्लाहट कान में पड़ती। वे चौंक कर सुनते। नौकर था नहीं, इसलिए माँ गली के मोड़ से आटा ले आने को कहतीं। सुखद कल्पना लोक से एका-एक इस निर्दय कठोर संसार में गिर पड़ना; पर इसका उन्हें अभ्यास हो गया था। कहाँ कल्पना-लोक में बड़े साहब बने थे, और कहाँ आटा लाने जाना पड़ता, यह सोच कर सन्तोष कर लेते कि कभी वे अवश्य ही कार-बंगले वाले बड़े साहब बनेंगे।

जव वे मैट्रिक की ड्योढ़ी से पार हुये, भगवान के आर्शीवाद से उनके छोटे भाई-वहिनों की संख्या बढ़ गई। साधनों के अभाव में और आगे पढ़ते जाना रामसहाय के लिये असम्भव था। सो नौकरी की खोज शुरू हुई, उनके पिता की दौड़-धूप ने रामसहाय को म्यूनिसीपैलिटी में एक जगह मिल गई। तनख्वाह के रूप में रामसहाय का जो मूल्य निश्चय हुआ उससे लज्जा अवश्य अनुभव हुई और अपने जीवन का भी कुछ आभास मिला परन्तु उसी समय अज्ञात की आशा ने अनिश्चित से स्वप्नों से सांत्वना वंधा दी।

रामसहाय को क्लर्की करते अठारह साल हो गए हैं। वड़े साहव तो नहीं, एक वड़े कुटुम्ब के कुलपति वे अवश्य हो गए हैं। शरीर बहुत दुवला हो गया है, और मन चिन्ताओं के वोझ से भारी रहता है। घर में कोई न कोई वीमार हमेशा ही रहता है। किसी को खांसी है तो किसी को वुखार। बच्चे तो रात-दिन वीमार ही रहते हैं। डाक्टर को दिखाने और इलाज कराने को पैसा है नहीं, इसलिए रामसहाय वावू का विश्वास है कि डाक्टर सव छलिया और वेईमान होते हैं। दवाइयों में क्या रक्खा है ? भगवान की इच्छा सवसे अपार है जव-तव दो-चार पैसे का ही, वहेड़ा, चूर्ण इत्यादि खिलाकर खुद ही घर की चिकित्सा कर लेते हैं। वड़े बूढ़ों की हड्डियाँ तो सतयुग की हैं। वे सव किसी प्रकार जीवित हैं। परन्तु वच्चे बुजुर्गों के अनजाने कर्मों का फल देने के लिये दो हिचकी लेकर आँखें वदल देते हैं। रोना पीटना मच जाता है। जब कुछ ही महीनों के वाद भगवान वह कमी पूरी कर देते हैं तो स्त्रियाँ ढोलक और मंजीरे की ध्वनि के साथ मन का आल्हाद उड़ेलने लगती हैं, गाना गाती और आनन्द मनाती हैं। एक रिवाज पूरा होता है। रामसहाय कभी नहीं सोचते कि आनन्द कैसा ? सन्तान की इच्छा उन्हें थी भी या नहीं ? भगवान माँगी भीख तो देते नहीं विन मांगे दिये जा रहे हैं। घर में मौत और जन्म से गमी और खुशी तो होती ही है परन्तु मुंशी रामसहाय के यहाँ गमी खुशी का प्रभाव क्षणिक ही होता है। नैराश्य और वेदना की गहरी रेखायें

उनके चेहरे को तटस्थ और गम्भीर बना चुकी थीं। अपने दुख दर्द को उन्होंने भगवान की इच्छा मान लिया था इसका अर्थ था कि उनके अपने बस कुछ नहीं।

उस दिन मुंशी रामसहाय सुबह खा-पी कर दफ्तर के लिये चलने लगे तो उनकी माता रास्ता रोके दरवाजे पर खड़ी थीं। गौर से देखा तो माँ की आँखों में आँसू तैरते दिखाई दिये। लगा कि अभी बरस पड़ेगी। घबड़ाए कि आज फिर क्या बात हो गई। वे कुछ कहें, इसके पहले ही उनकी माँ रोनी सी आवाज में बोल उठी—"बेटा, मैं तुमसे कई बार कह के थक गई। मैंने तुम्हें पैदा किया, पाला पोसा, बुढ़ापे में मेरी एक बात भी पूरी न करोगे। मैं बूढ़ी हो चली आज तक गृहस्थी के झंझट से छुट्टी नहीं मिली। अब तो कुछ मेरे परलोक का भी ख्याल करो। तुम दो-चार रोज की छुट्टी लेकर मुझे गंगा नहला दो तो मेरा परलोक बन जाय। बेचारी ललिता और विमला को तो भगवान ने उजाड़ दिया। तुम भाई हो, तुम्हारा ही सहारा है। वे भी मेरे साथ गंगा नहाकर अपना परलोक........"

रामसहाय ने बीच ही में बात काट कर कुछ रूखे स्वर में जवाब दिया—'मैं तो तुम लोगों का कोल्हू का बैल हूँ। जब देखो तब सिर पर सवार। गंगा भी बिना दाम के नहीं नहाई जा सकती। मेले की भीड़ से रेल में आदमी कट कर मर रहे हैं। और यहाँ पीछे देखने वाला कौन होगा? चाहे चोर सब सफाई कर जाँय। कर्जा भी कौन देता है इस जमाने में? गंगा मैया को तुम्हें स्नान कराना होता तो कुछ सम्पदा भी देतीं।'

माँ की आँखों के आँसू सूख गए और मुँह तमतमा उठा। तीव्र स्वर में बोलीं—'हाँ यह सब मेरे ही लिये हैं। गृहस्थी के झंझट तो सब होते ही हैं तुम्हारी नीयत ऐसी ही है तो भगवान समझेगा। नहीं तो क्या मेरे दूसरे बेटे और पोते भी तो हैं कमाने-खाने लग जायेंगे। जो भगवान को देखता है उसे ही भगवान भी देखते हैं। पर गहना जेवर सुख दुख के

समय के लिये ही तो होता है। वहू इतना लादे फिरती है। एक आध चीज कहीं रखवाकर कर मेरा बुढ़ापे का तीर्थ करवा देते......"

माँ अपनी बात पूरी नहीं कर पाई किवाड़ की आड़ में खड़ी वहू गरज उठी।

सास बहू को उलझा देख रामसहाय चुपके से छतरी बगल में दवा दफ्तर की ओर निकल भागे।

रामसहाय विक्षिप्त अवस्था में तेजी से दफ्तर की ओर जा रहे थे। परन्तु आगे राह रुक गई। ईंटों से भरा हुआ ठेला खींचता हुआ एक भैंसा चला आ रहा था कि पीछे से भौंपू बजाती हुई मोटर आ गई। ठेले की वजह से मोटर को राह नहीं मिल रही थी और मोटर ने आदमियों की राह रोक ली। भैंसे से आशा की जा रही थी कि वह जल्दी से ईंटों भरा ठेला खींच कर ले जाये परन्तु आगे भी कुछ रुकावटे थीं। भैंसे के मुँह से फेन निकल रहा था? आँखें उसकी कातरता से फैल रही थीं। उस विक्षिप्त अवस्था में मुंशी रामसहाय के पांव आगे राह न पाकर रुक गये और उनकी खोपड़ी चलने लगी। उन्हें लगा कि वे भी इसी भैंसे की तरह हैं। वे भी किसी का भार इसी प्रकार इतने सालों से दम तोड़कर चुपचाप खींच रहे हैं। इस भैंसे को इतना कष्ट सहकर क्या मिलता है। आधा-पेट चारा, जिससे वह फिर दूसरे दिन बोझा ढोता रहे, यही तो उसका भी हाल है। और उन्हें जान पड़ा कि भैंसा भी उनसे सुखी है। भैंसा की मां को कभी गंगा नहाकर पुण्य कमाने की इच्छा नहीं होती होगी, और न उसकी बहिनें विधवा होकर उसके सिर पर आ बैठती होंगी। मोटर के निकल जाने पर भैंसा मानों भारी ठेला खींचता हुआ आगे बढ़ गया। मुंशी रामसहाय भी लपके हुए दफ्तर को बढ़े।

शाम को दिन डूबने पर जब रामसहाय को दफ्तर से घर जाने की छुट्टी मिली तो सीधे घर लौटने का साहसने नहीं हुआ। वे कुछ दूर चलकर एक बदबूदार संकीर्ण गली में घुसे और काफी फासला पार कर चुकने पर एक मकान के दरवाजे की सांकल जोर से खटखटाई। कुछ जवाब न मिलने

पर जोर से दो तीन बार पुकारा 'मास्टर साहब'। चौथी बार जोर से पुकारने पर दरवाजा खुल गया। भीतर कमरे में एक दिया, दीवार के सहारे टिकी एक तोन पाए की छोटी-सी मेज पर टिमटिमा रहा था। बीच कमरे में बाँस की एक खुसी हुई कुर्सी पड़ी थी, जिसकी जीर्ण दशा दिए के प्रकाश में भी छिप न सकी। उस पर करीब डेढ़ इंच गर्द जमा थी। मास्टर साहब के कहने से इसी कुर्सी पर मुंशी रामसहाय बैठ गए। मास्टर साहब भी सामने खिड़की की चौखट पर बैठते हुए बोले—क्या दफ्तर से सीधे आ रहे हो। अच्छा पानी-वानी पियोगे ? भाई जब मिट्टी का तेल नहीं नित्य तो दिया ही जलाता हूँ।

"और क्या किया जाय" रामसहाय बोले—'अपने यहाँ तो न लालटेन जलती है। मिट्टी का तेल न मिला तो दिया जलाते हैं। बिजली आने की खबर है सो देखा जायेगा। अरे भाई जो बदा है, भोगना ही पड़ेगा। नहीं तो किसी रुपये वाले के घर पैदा न हुए होते। खैर, कर क्या रहे थे। क्या घर ही में बैठने का इरादा है।'

'अरे, भाई भाई अच्छी याद दिलाई। चलो न आज लाला मोटूराम के यहाँ अखण्ड कीर्तन है। इससे अच्छा और क्या होगा ?'

"लाला मोटूराम वही तो गल्ले वाले ? सुना है भाई इन्होंने बड़ी चाँदी काटी है इन दिनों ?"

'हाँ, भाई, हैं तो वहीं, मास्टर बोले,—'पर, जो भी हो, हैं बड़े भक्त। और भगवान भी तो भक्तों की ही सुनते हैं। हर पन्द्रहवे दिन कथा बचवाते हैं और अखंड कीर्तन करवाते हैं। परोपकारी भी हैं। लाखों का मुनाफा तो जरूर कमते हैं पर दान भी देते हैं। यही तो चाहिये कि आदमी यह लोक भी बनाये और परलोक भी। चलते हो तो चलो। थोड़ी देर भजन कीर्तन ही सही। उनके यहाँ सभी को निमंत्रण है। भगवान की कृपा से कुबेर हैं, उन्हें क्या कमी है।'

मुंशी रामसहाय मास्टर के साथ हो लिये। पर जैसे ही वे लाला जी के फाटक पर पहुँचे मन में एक बेचैनी सी अनुभव होने लगी। किसी बात

की एक धुन्धली-सी याद चिकोटी सी भरने लगी। उन्हें ऐसा भास हुआ कि वे ऐसे स्थान से परिचित हों। फिर एकाएक जैसे विद्युत का प्रकाश हुआ, अपने बाल्यकाल की ही कल्पना में बनाया हुआ अपना ही चित्र याद आ गया। ऐसे ही विशाल महल के स्वामी बनने का ही तो वे स्वप्न देखते थे। दोनों ओर बिजली की चकाचौंध पैदा करने वाली रोशनी हो रही थी। बाहर बरामदे में दो कारें थीं; दर्जनों नौकर-चाकर काम में व्यस्त इधर-उधर दौड़ रहे थे। अपने लिये ऐसा ही घर बना लेने की रामसहाय को आशा थी परन्तु पिछले जन्म के कर्मों ने सब बिगाड़ दिया। मुन्शी रामसहाय का मन उच्चाट हो गया। बेबसी की गहरी वेदना मन पर छा गई। कहाँ यह विशाल भवन और यह बिजली की रोशनी, और कहाँ उनका पुराना किराये का खण्डहर मकान और टिमटिमाता हुआ लालटेन। आगे बढ़े तो देखा एक बड़े कमरे में बहुत से लोग दरी यर बैठे हारमोनियम पर कीर्तन कर रहे थे। वे भी उनके पास ही एक कोने पर बैठ गए। लाला जी कीर्तन में भाग नहीं ले रहे थे। वे ध्यान मग्न एक मसनद के सहारे आराम से आधे लेटे से अपनी तोंद पर हाथ मल रहे थे। कीर्तन में बैठ कर रामसहाय का मन जहाँ तहाँ भटक रहा था। उनके मन में विचार उठा, आखें मूंदे लाला मोटूराम कैसे भगवान की भक्ति में रत हैं या वे भी कुछ और सोच रहे हैं। शायद बाजार भाव की बाबत सोच रहे हैं—भगवान से प्रार्थना कर रहे हैं गल्ले के भाव में तेजी आये और भगवान भक्त की सुनेंगे ही। कितने बल से मोटूराम भगवान से प्रार्थना कर रहे हैं। इस प्रार्थना की उपेक्षा भगवान कैसे कर सकते हैं।

रामनाथ मिश्र भजन आरम्भ करते थे, उनका बड़ा नाम था। कथा करने के पचास रुपया रोज लेते थे। दरी पर बैठे दूसरे लोग भजन में योग देते थे। अड़ोस-पड़ोस के ये सब लोग रामसहाय जैसे ही थे। जिन्हें भगवान ने केवल कष्ट ही दिया है। ऐसा लगता था कि इस प्रकार जोर-जोर से

चीखकर वे अपने अन्दर से उठती कराहने की आवाजों को भक्ति के उत्साह में बदल देना चाहते थे।

कीर्तन ज़ोरों पर चल रहा था, पर मुन्शी रामसहाय के मन में एक बेबसी थी। वे समझ नहीं पा रहे थे कि आज उनका मन ऐसा क्यों हो रहा है। आखिर जब किसी प्रकार मन न माना तो वहाँ से चुपके बाहर निकल गए।

घर आकर दारिद्रय के दृश्य ने उनका मन और भी व्याकुल कर दिया। माँ ने उन्हें देखते ही कुम्भ स्नान का प्रसंग फिर छेड़ा। रामसहाय सोचने लगे माँ गंगा स्नान कर अगले जन्म में मोटूराम की भाँति सुखी हो सकेगी। वे भी यदि कुछ धर्म-पुण्य इस जीवन में कर पाये तो परलोक बन सकता है और फिर उन्हें स्वयं अपने प्रति ग्लानि अनुभव होने लगी कि धर्म-पुण्य के काम में से उठ कर चले आये······?

वरदान

प्रकाश का मन उदास हो गया। आज तक उसके सामने एक लक्ष्य था और उस तक पहुँचने की उसे आशा भी थी। आशा के साथ भविष्य के रंगीन सपने थे। इन सपनों की मधुर छाया में उसने वर्तमान के दुःख-कष्ट, निर्धन सम्बन्धियों की उपेक्षा, सम्पन्न नातेदारों की अवहेलना की कभी परवाह न की। वह जानता था कि भविष्य के सपने सच होते ही वर्तमान अतीत बन जायगा, एक स्मृति मात्र रह जायगी। लेकिन अब वह आशा ही धूल में मिलने को थी और भविष्य भी वर्तमान की भाँति दुःख-मय बनने वाला था। उस आशा का सहारा लेकर देखे गये सपने मानो उसे मुँह चिढ़ा रहे थे।

वार्षिक परीक्षा के केवल दो महीने बचे थे। विज्ञान की पढ़ाई में सारा दिन कालेज में लग जाता था। सुबह-शाम ट्यूशनों में निकल जाता था। रात्रि में ही थका-माँदा वह पढ़ने बैठ पाता था। ट्यूशनों को भी वह परीक्षा के आखिरी दिन तक नहीं छोड़ सकता क्योंकि घर-बाहर के खर्च का यही एक जरिया उसके पास था।

पास वह हो जायगा, इसका उसे यकीन था। लेकिन सिर्फ पास होने से वह वही बनेगा जो हाई स्कूल के बाद ही बन जाता। उसकी इच्छा, जिसे वह बचपन से अपने अन्तर में संजोये था, प्रोफेसर या वैज्ञानिक बनने की थी। इसके लिए उसका आगे पढ़ना आवश्यक था। उसकी माँ के पास

जो थोड़े से गहने थे वे भी बिक चुके थे। ऐसी हालत में आगे पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति ही उसका एकमात्र सहारा था। और छात्रवृत्ति वह इस वर्ष प्रथम आकर ही पा सकता था।

प्रकाश ने कुर्सी को खिड़की की ओर मोड़ लिया। सामने की सड़क में आकर मिलने वाली दो सड़कों पर लोग आ-जा रहे थे। उसके घर के दोनों ओर कुछ दूरी पर दो पगडण्डियाँ भी उनमें जाकर मिल जाती थीं। इन दो सड़कों पर दूर से आती हुई अस्पष्ट आकृतियों का ठीक सामने की सड़क में आते-आते स्पष्ट मनुष्याकार रूप धारण कर लेना उसे बड़ा रहस्यमय लगता था। इस रहस्यानुभूति से उसका पीड़ित हृदय बड़ी शान्ति पाता था। जब कभी प्रकाश का मन बेचैन होता या किसी कारण उद्वेलित हो उठता तो वह खिड़की की ओर कुर्सी मोड़कर यही दृश्य देखा करता था।

आज उसका मन सबसे अधिक उद्विग्न था। वह अपनी पूरी ताकत लगा चुका है। अब कुछ कर सकना उसके बस के बाहर है। कोई दैवी शक्ति ही यदि अनुकूल हो जाती, तो उसका भविष्य मँझधार से किनारे लग जाता। दैवी चमत्कारों का वर्णन वह बचपन से ही सुनता आया था। भारत साधु-महात्माओं का देश है; जिनके लिए कुछ भी असम्भव नहीं। दूसरे देशों के सन्तों के चमत्कार भी उसने पढ़े थे। उसे भी इस समय किसी महात्मा के दर्शन हो जाते तो वह उनके चरण पकड़ कर उन्हें तब तक न छोड़ता जब तक कि वे दयार्द्र होकर उसे उसकी इच्छा पूरी होने का वरदान न दे देते।

वह सदा नियमित रूप से पूजा-पाठ करता रहा है। व्रत भी रखता है। साधु-महात्माओं का सत्संग भी करता है। अब तक वह अपनी शक्ति पर विश्वास करता रहा और उसे कभी कोई वरदान माँगने का ध्यान ही नहीं आया। अपनी शक्ति की सीमा वह देख चुका है। अब तो किसी योगी-महात्मा की ही कृपा हो जाय, तभी वह उबर सकता है। लोग कहते हैं, तीव्र उत्कण्ठा होने पर भक्तों को कभी-कभी महात्मा दर्शन दे भी देते

हैं। हे ईश्वर ! यदि उसे किसी योगी-महात्मा के इस समय दर्शन हो जाते तो···!

पीछे दरवाजे पर किसी के पुकारने की आवाज उसको सुनाई दी। उसने मुड़कर देखा तो एक स्वच्छ श्वेत वस्त्र पहने पुरुष दरवाजे पर खड़े थे। उनका चेहरा गम्भीर और आँखों में अपूर्ण तेज था। वे कोई दिव्य पुरुष प्रतीत होते थे। प्रकाश सहज ही उनकी ओर आकर्षित हो गया। उसने खड़े होकर जिज्ञासा के भाव से उनकी ओर देखा। वे कह रहे थे, 'बेटा, तुम्हें एक कष्ट दे रहा हूँ। मुझे एक आवश्यक पत्र लिखना है। एक कागज और कलम-दावात दे सकोगे।''

प्रकाश इतनी छोटी-सी बात के लिए क्या ना कहता। वह पुरुष लिखने में व्यस्त हो गया और प्रकाश अपने विचारों में मग्न।

उसकी विचार श्रृङ्खला एक कर्कश आवाज से टूटी। उसने देखा बाहर एक जटाधारी साधु भिक्षा माँग रहा है। उसका चेहरा काला, आँखें बड़ी थीं, जिनमें पड़ी लाल डोरियों के कारण उन्हें देखकर कुछ डर-सा लगता था। ऐसे साधु अक्सर भिक्षा माँगने आया करते थे। प्रकाश ने सदा की तरह उससे आगे बढ़ने के लिए कह दिया।

साधु गया नहीं। उसने तीक्ष्ण दृष्टि प्रकाश पर डाली और बोला, 'बेटा, साधु-महात्माओं का अनादर न किया कर। तेरे ऊपर अरिष्ट आया है। इसीलिए तू अत्यधिक चिन्तित है।' प्रकाश ने अक्सर साधुओं को इस प्रकार की अस्पष्ट बातें कहकर लोगों को डराते हुए देखा था। इसलिए उसने कुछ भौंहें चढ़ाकर साधु को निरुत्तर करने के लिए उससे पूछा—"चिन्ता किसे नहीं होती बाबा ? क्या चिन्ता है, यह बताइये तो ठीक है।''

साधु के होठों पर कुटिल मुस्कान बिखर गयी, 'महात्माओं की परीक्षा लेना चाहता है बेटा'···तो सुन, तुझे परीक्षा में प्रथम आने की चिन्ता है, नहीं तो तेरा भविष्य अन्धकारमय है।' प्रकाश ने विस्मय की दृष्टि से साधु को देखा, तो साधु गम्भीर स्वर में बोला, 'संकट तेरे सिरके ऊपर

मँडरा रहा है। अरिष्ट का निवारण न करेगा तो जीवन-भर दुःखी रहेगा।'

साधु की बात से प्रकाश के हृदय में उथल-पुथल मच गयी। मन में संशय जागा। कहीं यह सचमुच सिद्ध साधु तो नहीं है? अबकी उसने कुछ दबी जबान में साधु की टोह लेने की दृष्टि से कहा, 'अगर अरिष्ट है तो उसका भोग करना ही पड़ेगा बाबा! उसका निवारण कौन कर सकता है?'

साधु ने अपनी बड़ी लाल आँखें उस पर केन्द्रित करके कहा, 'साधु-संन्यासियों के लिए कुछ असम्भव नहीं है बेटा! केवल भक्ति होनी चाहिये।'

एक तीव्र स्वर कान में पड़ते ही प्रकाश और साधु दोनों ने एक साथ ही श्वेत वस्त्रधारी सज्जन की ओर देखा। उनकी भौंहें चढ़ी हुई थीं और वे क्रुद्ध स्वर में कह रहे थे, 'क्यों साधु, तू भविष्य बता सकता है? इतना योगबल है तुझमें?'

साधु एक क्षण के लिए स्तब्ध रह गया। प्रकाश को भी बड़ा अचम्भा हुआ। उन शान्त और गम्भीर पुरुष को क्रुद्ध होते देख वह भी कुछ सहम-सा गया।

साधु तत्काल ही सँभल गया। दृढ़ स्वर में बोला, 'हाँ, मैं भविष्य बता सकता हूँ।'

दिव्य पुरुष के चेहरे पर घृणा की एक झलक प्रकट होकर गायब हो गयी। 'हुँ ह! भविष्य बता सकता है! इतना सरल है भविष्य बताना।' ऐसा विदित होता था कि वे अपने से ही कुछ कह-सुन रहे है। फिर कुछ क्षण वे आँखें बन्द कर बिलकुल शान्त बैठे रहे। अबकी साधु की ओर देखकर जब वे बोले, तो उनका स्वर संयत होने पर भी उसमें कठोरता स्पष्ट लक्षित होती थी, 'भविष्य की बातें तू बाद में बतायेगा। अभी तेरा कल्याण इसी में है कि तू थोड़ा-सा वर्तमान बता दे।'

साधु जिज्ञासा और कौतूहल के भाव से उनकी ओर देखता रहा। प्रकाश आश्चर्य चकित होकर कभी दिव्य पुरुष की ओर देखता कभी साधु की ओर।

दिव्य पुरुष ने कुछ सोचते हुए दाहिना हाथ अपने सिर के चारों ओर तेजी से घुमा कर चुटकी बजायी और मुट्ठी दिखाते हुए गम्भीर स्वर में बोले, 'भविष्यवक्ता त्रिकालज्ञ होता है। उसकी दिव्य दृष्टि होती है। तेरी भी दिव्य दृष्टि होगी। चिन्ता मत कर। मैं तुझसे कोई बड़ा प्रश्न नहीं पूछूगा। तू इतनी छोटी-सी बात ही बता दे कि इस मुट्ठी में क्या है।'

साधु ने एक क्षण सोचा। फिर हँसकर बोला, 'ऐसी छोटी परीक्षा लेना साधुओं का अपमान करना है। फिर भी तुम्हारी अहंकार और दम्भ की बातों को क्षमा कर तुम्हारे इस क्षुद्र प्रश्न का उत्तर दिये देता हूँ। तुम्हारी मुट्ठी में मुड़ा हुआ कागज है।'

दिव्य पुरुष ने साधु को उपेक्षा की दृष्टि देखकर मुट्ठी खोल दी। उसमें सुपारी थी।

साधु का चेहरा एक क्षण के लिए फक पड़ गया, किन्तु तत्काल कुछ स्मरण आते ही बोल उठा, 'इसका अर्थ यही है कि तुमने भी कुछ सिद्धि प्राप्त कर रखी है। तुम्हारे हाथ में तो कागज की ही पुड़िया। तुमने उसे सुपारी में बदल दिया।'

दिव्य पुरुष तिरस्कार भरे स्वर में बोले, 'कुछ सिद्धि प्राप्त की है! हुँहँ...और तू अभी अरिष्ट निवारण की बात कर रहा था। साधु होकर कहता है कि कर्मफल के भोग से मनुष्य बच सकता है। तुझ जैसे गेरुआ वस्त्र धारियों को देखकर ही लोगों की साधु-महात्माओं से श्रद्धा हट रही है।'

अब की साधु अकड़कर धृष्ट स्वर में बोला, हाँ, 'साधु-सन्यासी योग बल से किसी के भी पाप काटकर उसके अरिष्ट का निवारण कर सकते हैं।'

दिव्य पुरुष ने अपनी आँखें बन्द कर ली। वे ध्यान मग्न प्रतीत होते थे। फिर अपने को संयत कर गम्भीर वाणी में बोले। प्रयत्न करने पर भी वे पर अपनी वाणी में हृदय में उठने वाले पवित्र क्रोध के आवेश को न छिपा सके—'तू कहता है कि योग बल से किसी के भी पाप काटे जा सकते हैं। बात ठीक है। पर तू तो साधारण ब्राह्मण है, और कुटिल भी है। संयासी का वेश धारण करके लोगों को मूर्ख बनाता है। तूने कुछ मन्त्र सिद्ध अवश्य किये हैं और उन मन्त्रों के बल पर...'

एकाएक दिव्य पुरुष ने आँखें खोल दी। उनका चेहरा देखकर यह प्रतीत होता था मानो वह आग का गोला हो और उससे लपटे निकल रही हों। दाहिने हाथ की तर्जनी साधु की ओर लक्षित करके वे अत्यन्त रोष भरे स्वर में बोले, 'बोल! तू गृहस्थ ब्राह्मण है या सन्यासी? तू समझता है कि कुछ मन्त्र सिद्ध कर तू सभी पर प्रहार कर सकता है और यज्ञोपवीत की तीन मन्त्र सिद्ध ग्रन्थियों के बल पर दूसरों के प्रहार से बच सकता है।'

यहाँ पर आकर दिव्य पुरुष ने अपना दाहिना हाथ मेज पर रख दिया। उनका स्वर गुरु गम्भीर हो गया। ऐसा प्रतीत होता था कि यदि वे अपने को सँभाले न रहेंगे, तो उनकी आँखों से निकलने वाली अग्नि किरणें साधु को भस्म कर देगी। 'कुटिल ब्राह्मण, तूने योगबल का नाम सुना है, देखा नहीं है। अपने यज्ञोपवीत की तीन ग्रन्थियों को तुरन्त खोल, नहीं तो शाप से भस्म होने के लिए तैया हो जा।'

साधु ने उनकी बातों का प्रतिवाद करना चाहा, पर उसकी जीभ खड़खड़ा गयी। वह हार नहीं मानना चाहता था। उसने फिर कुछ कहने का भरसक प्रयत्न किया, पर दिव्य पुरुष की आँखों में ऐसा तेज था कि उसके सामने उसका मुँह खुल ही न पाया। उसकी साँस भी घुटती हुई-सी लग रही थी। वह घबड़ा गया और उसने लपककर दिव्य पुरुष के पाँव पकड़ लिये। 'योगिराज, क्षमा कीजिये। मैंने आपको पहचानने में भूल की। मुझे क्षमा कीजिये महाराज! अब ऐसी भूल कभी न होगी।'

दिव्य पुरुष उठ खड़े हुए। पहले की तरह गम्भीर और रोषमिश्रित स्वर में बोले, 'तूने अकारण मेरे कार्य में विघ्न डाला है। मेरे पास अब अधिक समय नहीं है। तू अपने यज्ञोपवीत की ग्रन्थियां खोलता है या मैं…'

साधु दिव्य पुरुष के हठ से और भी घबड़ा गया। उनके पांव और जोर से पकड़कर गिड़गिड़ाते हुए बोला, 'महाराज, ये ग्रन्थियाँ खुलते ही मैं निस्तेज हो आऊँगा। पूरे जीवन मैंने इतने ही मन्त्र सिद्ध किये हैं। इन्हें खो देने से मैं अपने बच्चों का पेट कैसे पालूंगा ?'

दिव्य पुरुष के स्वर में किंचित व्यंग्य का पुट आ गया, 'तेरा तात्पर्य यह है कि तू अपनी कुटिलता से दूसरों को ठगकर अपना और अपने बच्चों का पेट पालता रहेगा। है न ? देख, जहां तक तेरे बच्चों के पालन-पोषण का प्रश्न है, तू जैसे ही इन ग्रन्थियों को खोलेगा, मैं तुझे अभय दान दे दूंगा कि तेरे बच्चों के लिए खाने-पोने की कमी कभी न रहेगी। अब तू…'

साधु को अब भी हीलेहवाले करते देश दिव्य पुरुष एकाएक इस तरह बोले मानो सिंह गरज रहा हो, 'तू उन्हें खोलता है या शापसे…'

साधु इस तरह तड़पकर पीछे हटा मानो किसी अदृष्ट शक्ति ने उसे पीछे धकेल दिया हो। उसने तत्काल यज्ञोपवीत बाहर निकालकर उसकी ग्रन्थियां खोल दीं। उनके खुलते ही उसका चेहरा एकाएक निस्तेज हो गया, हाथ-पैर ढीले पड़ गये और सिर आगे की ओर लटक गया।

दिव्य पुरुष अब शान्त हो गये। वे गम्भीर परन्तु मधुर स्वर में बोले, 'जा, तुझे और तेरे बच्चों को अब कभी खाने का कष्ट न रहेगा।'

प्रकाश को भान हुआ कि वह आज तक जिन सिद्ध योगी-महात्मा को कल्पना करता रहा है वे उसके परम सौभाग्य से उसके सामने प्रकट हो गये हैं। अब एक क्षण भी खोने का अर्थ होगा पास आयी लक्ष्मो को त्याग कर सदा हाथ मलते रहना।

प्रकाश ने दौड़कर दिव्य पुरुष के चरण पकड़ लिये और गद्गद् स्वर

में बोला, 'महाराज, आप सर्वज्ञ है। मेरे ऊपर भी कृपा करें। मैं आपकी शरण...'

दिव्य पुरुष ने बड़े प्रेम से उसका हाथ पकड़कर उसे उठा लिया। उसके चेहरे पर दिव्य आभा प्रकाशमान हो रही थी। मृदु स्वर में बोले, 'बेटा, यह ब्राह्मण कुटिल है। तू साधु पुरुष है। तेरा कष्ट मैं जानता हूँ। धनाभाव से तू परीक्षा में अपना इच्छित फल पाने ने असमर्थ है। इस कुटिल ब्राह्मण ने अपनी मन्त्र शक्ति से तुझे जो बताया है, वह ठीक है बेटा! तेरे ऊपर अरिष्ट है।'

प्रकाश पुनः उनके चरणों पर गिरने को झुका, तो उन्होंने उसे रोक-कर करुण मिश्रित स्वर में कहा, 'बेटा, तू सुशील है, नम्र है और इससे भी अधिक भक्तिभाव रखता है। मैं तेरा अरिष्ट दूर कर दूँगा।...इसके लिए तुझे शनिश्चर का दान करना होगा।'

प्रकाश ने यह सुन रखा था कि योगी महात्मा अपनी शक्ति का प्रदर्शन प्रत्यक्ष रूप से न करके किसी चीज को अवश्य ही निमित्त बनाकर उसके अरिष्ट का निवारण करना चाहते हैं। और अब इतने बड़े योगी से वरदान पा जाने पर रुपये की कमी क्या रहेगी। हाथ जोड़कर बोला, 'महाराज, मुझे जो आज्ञा हो, करूँगा।'

दिव्य पुरुष कुछ सोच में पड़कर बोले, 'बेटा, यह दान तो एक हज़ार रुपये का भी होता, एक सौ एक का भी, एक्कावन का भी, पर तू अभी धनाभाव से योंही पीड़ित है। तू पचीस का ही दान कर...वह दान भया-नक होता है। इसे कोई लेता नहीं। इस समय तेरे सौभाग्य से यह साधु वेशधारी कुटिल ब्राह्मण यहीं पर है। इसे...'

शनिश्चर का दान हर कोई लेता नहीं, यह प्रकाश भी जानता था।

साधु ने काँपते हुए दिव्य पुरुष के पैर पकड़ लिए, 'महाराज मैं यों ही शक्तिहीन हो चुका हूँ। इस दान से तो मेरी गृहस्थी भी उजड़...'

दिव्य पुरुष ने उसे आश्वस्त करते हुए दया मिश्रित स्वर में कहा, 'मैं वचन देता हूँ, तेरे परिवार का कसी प्रकार का अनिष्ट न होगा। हाँ, तू

यदि अब कभी कुटिलता की ओर मुड़ा तो यह शनिश्चर तेरा पीछा कभी न छोड़ेगा। अब उठ, दान लेने के लिए तैयार हो जा।'

साधु दिव्य पुरुष के चरणों से हटकर एक ओर भयभीत मुद्रा में बैठ गया।

प्रकाश उसी दिन एक ट्यूशन के पचीस रुपये लाया था। उन्हें मेज के ड्राअर से निकालकर दिव्य पुरुष के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

दिव्य पुरुष ने साधु को आज्ञा दी, 'पद्मासन पर बैठ कर उल्टे हाथ से यह दान ग्रहण कर।'

साधु भय से काँप उठा, 'महाराज, सीधे हाथ ही दान...'

दिव्य पुरुष ने कड़ी आवाज में कहा 'तेरी कुटिलता जाती नहीं। जो कहता हूँ सो कर।'

साधु पद्मासन में बैठ गया। उसके हाथ काँप रहे थे।

दिव्य पुरुष ने प्रकाश से कहा, 'बेटा, अब तू ये रुपये उसकी उल्टी हथेली पर रख दे और शांत बैठा रह।'

कुछ क्षण दिव्य पुरुष आँखें बन्द कर मन ही मन कुछ उच्चारण करते रहे और फिर आँखें खोल तेज स्वर में साधु से कहा, 'ब्राह्मण, अब तू इस दान को लेकर सीधे चला जा और सावधान! पीछे मुड़कर मत देखना। अब यदि तू कुटिलता की ओर बढ़ा, तो यह शनिश्चर तुझे समाप्त कर देगा।'

साधु सिर झुकाकर चल दिया। उसकी चाल से यह स्पष्ट विदित होता था कि वह अत्यधिक चिन्ता के बोझ से दबा जा रहा है।

दिव्य पुरुष प्रकाश की ओर मुड़कर बोले, 'बेटा, इन झंझटों से बचने के लिए ही मैं श्वेत वस्त्र पहनता हूँ। यह मर्त्यलोक है। भगवन् का लीला स्थल है। कोई यहाँ अपने सुख के लिए किसी को मार रहा है। कोई मार खाने के लिए ही बना है। कोई किसी को ठगने में लगा है। कोई ठगे जाने के लिए पैदा ही हुआ है। कोई किसी को प्यार कर रहा

है, तो कोई निपट घृणा'''आदि काल से संसार का यही चक्र चल रहा है और चलता रहेगा। योगी को इनसे कुछ लेना-देना नहीं होता। परन्तु इस कुटिल ब्राह्मण ने मुझे भी आज क्रोध के वशीभूत कर दिया।' दिव्य पुरुष की वाणी में व्यथा भर आयी। 'मुझे क्रोध नहीं करना चाहिये था। यह कुटिल ब्राह्मण भी तो इसी मर्त्यलोक का जीव है। यह भी विधि के विधान के अनुसार अपनी लीला कर रहा था। मुझे संयम नहीं खोना चाहिये था।'

'प्रकाश दिव्य पुरुष के चरणों पर गिर पड़ा, 'महाराज, मेरे लिए यह कुटिल ब्राह्मण वरदान सिद्ध हुआ। वह न आता तो मैं आपको कदापि न पहचान पाता।'

दिव्य पुरुष ने मेज पर से अपने हाथ का लिखा हुआ कागज ले लिया और दरवाजे की ओर मुड़कर बोले, 'बेटा, तेरा कल्याण हो। एक बात का ध्यान रखना। अभी इन बातों की चर्चा किसी से करना। मैं अपने को प्रकट कर किसी और झंझट में पड़ना नहीं चाहता।'

दिव्य पुरुष चले गये और प्रकाश परम सन्तोष के भाव से कुर्सी को खिड़की की ओर मोड़ कर बाहर की ओर देखने लगा।

आज उसकी साध पूरी ही गई हो गयी थी। हृदय में खुशी समा नहीं पा रही थी। उसका सौभाग्य था कि वह कुटिल ब्राह्मण आ गया और क्रोधित हो जाने के कारण दिव्य पुरुष का वास्तविक रूप प्रकट हो गया। उसे अब अपना भविष्य स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

प्रकाशको ऐसा अनुभव हुआ कि इतने अधिक उल्लास, प्रसन्नता और सन्तोष को उसका छोटा हृदय संभाल न पायेगा। ध्यान बँटाने के लिए वह सामने सड़क की ओर गौर से देखने लगा। उसकी दृष्टि दो ओर की सड़कों पर आने वाली दो भिन्न-भिन्न आकृतियों पर पड़ी। उनके चेहरे साफ नहीं दिख रहे थे, पर उनके वस्त्रों के रंग लाल और सफेद प्रतीत होते थे। कुछ ही देर बाद दोनों आकृतियों साथ-साथ सामने को

सड़क पर आ गयो और उनके चेहरे साफ दिखाई देने लगे। यह क्या ! ये तो दिव्य पुरुष और साधु ही थे। प्रकाश ने आँखे मल-मलकर देखा। वे दिव्य पुरुष और साधु ही थे। इनका साथ कैसे हुआ ? प्रकाश का माथा ठनका। कहीं यह सब मिला भगत तो नहीं थी। कुछ और सोचने के पहले ही वह सचाई का पता लगाने के लिए खिड़की से खूदकर घर की दाहिनी ओर की पगडण्डी से उनकी ओर दौड़ा। दौड़ा क्या, हिरन की तरह चौकड़ियाँ भरने लगा।

उन आकृतियों ने जब किसी को बेतहाशा अपनी ओर आते देखा तो वे भी चौकीं। तत्काल ही प्रकाश को पहचानने में उन्हें भी देर न लगी। प्रकाश ने देखा, सफेद वस्त्रधारी दिव्य पुरुष ने अपने हाथ से कुछ चीज उसकी ओर फेंक दी है। पास पहुँचने पर उसे २५ रु० के नोट जमीन पर पड़े मिले। योगिराज और कुटिल ब्राह्मण कहलाने वाले दोनों व्यक्ति सरपट भागे जा रहे थे। सड़क उस समय सुनसान थी। उन्हें निकल भागने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

प्रकाश ने रुपये बटोरे और धीरे-धीरे अपने कमरे में आकर कुर्सी पर बैठ गया। उसे अपनी बेबसी पर खीझ और रोना आ रहा था। गरजने उसे किस कदर बावला बना दिया। एक क्षण के लिए भी उसे साधु और योगिराज पर अविश्वास नहीं हुआ। मजबूरी ने उसकी आँखें बन्द कर दी थी और अक्ल पर ताला जड़ दिया था। यह तो केवल संयोग था कि इस खिड़की ने साधु और योगिराज की पोल खोल दी। नहीं तो पूरा एक महीना ट्यूशन करके कमाया हुआ उसका रुपया वे अब तक चट भी कर गये होते।

प्रकाश के हृदय के एक कोने से अनायास ही एक निःश्वास उठकर वहीं दब गया। अगर वह इतना निर्धन न होता और उसके सामने भी सम्पन्न लोगों की तरह उन्नति के अवसर होते, तो क्या वह इस तरह मूर्ख बन पाता ! आगे भी तो जीवन उसके लिए सुगम मार्ग न होकर

बीहड़ पथ ही रहेगा। सफलता आँचल पसारे उसके पास न आयेगी। उसे ही उसको प्राप्त करने के लिए जी तोड़ कोशिश करनी पड़ेगी। फिर भी जैसी उसकी स्थिति है उसमें वह मिले, न मिले, कोई भरोसा नहीं। जो भी हो, कर्म करना ही उसके हाथ में है। वह कर्म करेगा, जी जान से करेगा, परिणाम जो भी हो।

सामने रखी पुस्तक पर नजर पड़ते ही प्रकाश को सहसा परीक्षा का स्मरण हो आया। मन में उठ रहे विचारों और तर्कवितर्कों से ध्यान को बलपूर्वक मोड़कर उसे उसने पुस्तक पर केन्द्रित कर दिया।

●